हिमाचल प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग की द्वैमासिक पत्रिका

आवरण
मुखपृष्ठ : सैंज (ठियोग, जिला शिमला) के एक पुराने महल का द्वार

इस पृष्ठ के चित्र : हिमाचल नृत्य नाटिका के दो दृश्य
छाया : हाकम शर्मा

विपाशा

साहित्य, संस्कृति एवं कला की द्वैमासिकी
वर्ष-4, अंक - 21, जुलाई - अगस्त, 1988

मुख्य संपादक
सी०आर०बी०ललित
निदेशक, भाषा एवं संस्कृति, हि० प्र०

संपादक
तुलसी रमण

संपर्क : संपादक-विपाशा, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि० प्र०
त्रिशूल, शिमला-171003 दूरभाष : 3669, 6846, 4614

वार्षिक शुल्क : दस रुपये, एक प्रति : दो रुपये

क्रम

3 पाठकीय
5 संपादकीय
7 गुलेरी जी का पत्र-साहित्य : **डॉ० मनोहर लाल**
16 महाकवि कुमार दास की दृष्टि में हिमालय : **सत्यपाल शर्मा**

कहानी

21 डग्याली की रात : **श्रीनिवास जोशी**
26 शेरनी की पूंछ : **श्रीवत्स**

भाषांतर

31 मां-बेटियां (पंजाबी कहानी) : **मोहन सिंह बाबा**

कविता

34 पांच कविताएं : **अवधेश कुमार**
39 तीन कविताएं : **रेखा**

प्रवेश

45 चार कविताएं : **ईशिता राजन**

देशांतर

49 पांच रूसी कवियों की कविताएं : **अन्ना अख्मातोवा, रसूल हमजातोव, लेओनीद मार्तीनोव, फ्योदोर त्युत्चेव, अल्येस रयाजानोव**

लेख

64 संस्कृत वाङ्मय में मनोविज्ञान : **प्रो० बलवन्त कुमार**
74 साहित्य के समाजशास्त्र को लुसिएं गोल्डमान की देन : **चरणसिंह अमी**
80 जिस जगह पर जा लगी··· : **प्रेम पखरोलवी**

लोक संस्कृति

84 तमिल प्रदेश में मंदिर पूजा का रूप : **डॉ० एम० शेषन्**

समीक्षा

87 नन्दकिशोर आचार्य के नाटकों की प्रासंगिकता : **कुन्दन माली**
92 स्मृति के परिदृश्य : **यादवेन्द्र शर्मा**

आयोजन

94 हिमाचल नृत्य नाटिका
96 छायाचित्रों में सांस्कृतिक जनपद : **मुरारी लाल आर्य**

पाठकीय

अंक उन्नीस

विनोद शर्मा (शिमला)

विपाशा का अंक उन्नीस पढ़ा। निधि स्तम्भ में माखनलाल चतुर्वेदी की चुनी हुई रचनाएं पढ़ने को मिलीं। इस पीढ़ी के लेखकों की रचनाओं से गुज़रते हुए हमें एक अहसास बराबर होता है कि स्वतन्त्रता के आंदोलन में इन रचनाकारों का अमूल्य योगदान रहा था। इस तरह वे रचनाकार अपने समय और लोगों की आकांक्षाओं से पूरी तरह जुड़े रहते थे। राष्ट्र और राष्ट्र के निवासियों के प्रति इनके मन में एक तरह की आस्था या उत्तरदायित्व रहता था। इन्हीं संदर्भों को दृष्टि में रखते हुए जब हम आज के लेखकों और उनकी रचनाशीलता को लेकर सोचते हैं तो कोई स्पष्ट तस्वीर नज़र नहीं आती। विशेष रूप से राष्ट्र के प्रति उनके उत्तरदायित्व को लेकर तो काफी कुछ अस्पष्ट ही रह जाता है। बल्कि देखने में यह आता है कि राजनीतिज्ञों की राह चलते हुए साहित्यकार भी एक तरह की राजनीति ही कर रहे हैं। वे एक तरह की निष्पक्षता, धैर्य और अपनी आवाज़ को लेकर समाज के बाकी पक्षों से ऊपर नहीं दिखाई देते।

स्वतन्त्रता पूर्व के लेखकों पर आंदोलन का प्रभाव तो स्वभाविक ही था लेकिन उन लेखकों की कथनी और करनी में भी एकरूपता रहती थी। उनका जीवन वास्तव में प्रेरणा का पुंज होता था।

रामस्वरूप (सुन्दरनगर)

विपाशा के मार्च-अप्रैल, 1988 अंक में 'धनु और मकर की आकाशीय स्थिति और भारतीय ज्योतिषियों महाभ्रांति' शीर्षक लेख पढ़ा। यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आज तक ज्योतिष में इस तरह की भ्रांतियां चली आ रही हैं, जबकि यह इतना प्राचीन शास्त्र माना जाता है। क्या अब तक किसी विद्वान का इस बात की ओर ध्यान ही नहीं गया। वैसे भी इस गणित विद्या के गणित पक्ष पर तो विश्वास किया जा सकता है लेकिन फलादेश पर तो पूरा विश्वास करना अपने आपमें एक और भ्रांति है, क्योंकि जब फलित शास्त्र के आचार्यों में ही मत की भिन्नता पाई जाती है तो साधारण ज्योतिषियों द्वारा अर्थार्जन के लिए लगाई जाने वाली तुकों पर कैसे विश्वास हो सकता है। लेकिन देखने में यह आता है कि आज का समाज जितना आधुनिक होता जा रहा है ज्योतिष की भविष्यवाणियों के पीछे उतना ही भागा जा रहा है। सबसे आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि हमारे अंग्रेजी-हिन्दी आदि भाषाओं के पत्रों का गुज़ारा राशिफल या भविष्य दर्शन के बिना नहीं होता। क्योंकि अधिकांश पाठक सबसे पहले

यही कालम पढ़ते हैं। इससे भी बढ़कर आश्चर्य तब होता है जब एक ही राशि का फल अलग-अलग पत्रों में भिन्न ही नहीं बल्कि विपरीत भी होता है। लेकिन ज्योतिष के मूढ़ रसिया बाज नहीं आते।

राजश्वर सिंह (दिल्ली)

इस अंक में माखनलाल चतुर्वेदी की सामग्री अच्छी लगी। थोड़े से पृष्ठों में एक रचनाकार की अलग-अलग छवियों से गुजरा जा सकता है। जैनेंद्रजी को लेकर प्रभाकर श्रोत्रिय का लेख भी अच्छा बन पड़ा है। लेकिन इस अंक में कहानियों का अभाव खटकता है। कुल मिलाकर उत्पलेन्दु चक्रवर्ती की एक बांग्ला कहानी है और दूसरी निधि के अन्तर्गत माखनलाल जी की। एक अंक में चार-पांच कहानियां हों तो कहानी के पाठकों को पर्याप्त सामग्री मिल पाती है।

श्यामलाल शर्मा (चंडीगढ़)

ड्रिफ्ट वुड पर श्री प्रभात कुमार का लेख इस कला-विधा को लेकर कोई विशेष महत्वपूर्ण जानकारी नहीं दे पाता। 'ड्रिफ्ट वुड' को लेकर ऐसे कला-समीक्षकों को लिखना चाहिए जो इस कला को सही दिशा में आयाम दिला सकें, क्योंकि अभी तक यह कला विकास के प्रारंभ से ही गुजर रही है, इसमें अच्छी संभावनाएं हैं। अधिकांश पढ़े-लिखे लोग भी कला की इस विधा से परिचित नहीं हैं। ड्रिफ्ट वुड के क्षेत्र में सक्रिय कई कलाकार इन्हें बनावटी आकार देने की कोशिश करते हैं जो सही नहीं है।

सोमदेव (दिल्ली)

इस अंक में सुमनिका मेहरा की कविताएं प्रभावित करती हैं और हिमांशु जोशी द्वारा इब्सन के शहर की सींयत की यात्रा काफी रोचक व ज्ञानवर्धक है। उत्पलेन्दु चक्रवर्ती की कहानी भी अच्छी है। लेकिन लोक संस्कृति में 'पहाड़ और देवता' शीर्षक लेख सतही सूचनाएं ही देता है। सांस्कृतिक रहस्यों की गहराई को नहीं पकड़ पाता, जिसके लिए पाठक पहाड़ों की विलक्षण संस्कृति को हमेशा जिज्ञासा से देखते हैं।

योगेश कुमार (पटना)

विपाशा के कुछ अंक एक मित्र के पास दिल्ली में देखे। एक सरकारी पत्रिका को इतनी साफ सुथरी स्तरीय सामग्री के साथ देखकर बहुत अच्छा लगा। इसमें पहाड़ी चित्रकला और वहां की संस्कृति को लेकर भी लेखादि जा रहे हैं जो दूर मैदानों के पाठकों के लिए अतिरिक्त सम्मोहन रखते हैं। विषयवस्तु और रचना क्षेत्र की दृष्टि से भी इसका फलक व्यापक दिखाई देता है, जिससे पाठकों के लिए यह पत्रिका अलग तरह का आकर्षण रखती है।

संपादकीय

बीस अंकों के बाद

पिछले बीस अंकों पर प्रतिक्रिया स्वरूप 'विपाशा' के पाठक अक्सर लिखते रहे हैं कि 'एक सरकारी पत्रिका होने के बावजूद सामग्री के चयन और साफ सुथरे प्रोडक्शन के रहते इसका समग्र रूप सरकारी पत्रिकाओं से अलग दिखाई देता है।' इसे पाठकों का विपाशा के प्रति कुछ संतोष भी कहा जा सकता है और दूसरी ओर आम सरकारी पत्रिकाओं की स्थिति को लेकर पाठकों की सामान्य धारणा भी इससे अभिव्यक्त होती है। वस्तुतः सरकारी पत्रिकाओं की विडम्बना यह रही है कि पत्रिका की निर्धारित विषयवस्तु को गौण बनाते हुए इनमें जहां सतही प्रचार को अधिमान दिया जाने लगता है वहीं तरह-तरह के दबावों के तहत दोयम दर्जे की सामग्री भी प्रकाशित होती है। कुछ लोग यह मानकर भी चलते हैं कि उनकी कलम से जो निकल रहा है उसके सर्वोत्तम होने की गारंटी है और अनेक जन-सुविधाओं की तरह सरकारी पत्रिका की प्रकाशन सुविधा पर उनका अधिकार है। लेखन के प्रति अपेक्षित आस्था, आधारभूत ईमानदारी और गंभीरता के अभाव में भी बहुधा लेखक कहलाने का शौक सर्वोपरि हो जाता है। इस भोले शौक को पूरा करने के लिए सरकारी पत्रिकाएं ही सुलभ रहती हैं। इसका नतीजा सामने ही है कि साहित्य में अधिकांश 'सरकारी पत्रिकाएं' अक्सर दूर से अलग करके देखी जाती हैं—पढ़ी नहीं जातीं। इस तरह इन पत्रिकाओं की सार्थकता पर भी प्रश्न चिह्न लग जाता है।

हमें यह मानकर तो चलना ही चाहिए कि कोई भी पत्रिका लेखकों के लिए ही न होकर प्रमुख रूप से पाठकों के लिए होती है। इसलिए पाठकों के प्रति जो उत्तरदायित्व एक पत्रिका का रहता है। उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। 'विपाशा' में हमारी बराबर यह कोशिश रही है कि जो कुछ इसमें छपे उसकी किसी न किसी स्तर पर तो सार्थकता हो। साहित्य के पाठकों को हर अंक में कुछ पढ़ने योग्य मिल सके। बावजूद इसके यह दावा करना भी ग़लत होगा कि इसमें सब कुछ ही अच्छे स्तर का जा सका है। बेहतर चयन के लिए स्तरीय सामग्री का अभाव इसका प्रमुख कारण रहा है।

विपाशा के गत बीस अंकों के मुख्य संपादक एवं प्रकाशक (निदेशक, भाषा एवं संस्कृति विभाग) श्रीयुत् श्रीनिवास जोशी पदोन्नति पर राज्य सचिवालय में चले गये हैं। शुरू के इन बीस अंकों में उनका योगदान इस दृष्टि से भी महत्व-

पूर्ण रहा कि उन्होंने स्वयं साहित्य में दखल रखते हुए भी एक प्रशासिक अधिकारी की तरह संपादकीय फैसले लेने से बराबर परहेज रखा और एक तरह के विश्वास और सही समझ के साथ संपादक पर उसकी पूरी जिम्मेदारी डालते हुए सामान्य तौर पर रचनात्मक सुझाव ही देते रहे। ससम्मान विदाई के साथ इस अंक में जोशी जी की कहानी 'डग्याली की रात' शामिल है। हमारे एक सहकर्मी युवा लेखक राकेश वत्स (श्री वत्स) भी इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में नियुक्ति होने के कारण विभाग से विदा हुए हैं, इस अंक में उनकी कहानी 'शेरनी की पूंछ' भी दी गई।

भारत और रूस दोनों मित्र देशों में आयोजित महोत्सवों के फलस्वरूप इधर दोनों देशों के साहित्यिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में काफी अदान-प्रदान हुआ। इसी दृष्टि से इस अंक में 'देशांतर' के अन्तर्गत रूस के पांच कवियों की अनूदित कविताएं दी गई हैं। दर्शन, मनोविज्ञान, साहित्य और समाजशास्त्र जैसे विषयों को लेकर प्रो० बलवन्त कुमार तथा चरणसिंह अमी के लेख अपनी जगह महत्व-पूर्ण हैं।

कविता, समीक्षा तथा कहानी आदि नियमित सामग्री के साथ इस अंक से एक नया स्तंभ-'प्रवेश' शुरू किया जा रहा। इसमें इस अंचल के संभावनाशील नवोदित रचनाकारों की रचनाएं दी जाएंगी। आगामी अंकों में कुछ और नये स्तम्भ शुरू करने का भी विचार है।

गुलेरी जी का पत्र-साहित्य

प्रस्तुति : डॉ० मनोहरलाल

पं० श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा अपने समय के साहित्यकारों तथा सम्बन्धियों को लिखे शताधिक पत्र उपलब्ध हैं। इनमें उनका चरित्र तथा व्यक्तित्व साहित्य और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त हुआ है। गुलेरी जी के पत्र उनके जीवन-दर्शन तथा जीवन-मूल्यों को समझने में सहायक हैं। इनमें उनके मन की निर्मलता तथा सहजता व्यंजित है। देश तथा भाषाहित की भावना भी बखूबी लक्षित है। उनके पत्र बताते हैं कि संघर्षमय जीवन जीते हुए भी वे मन से कभी हारे नहीं थे। वे प्रगतिशील विचारधारा तथा जीवन में नयेपन के पक्षधर थे। आस्तिक मनुष्य, प्रखर चिन्तक तथा पितृभक्त होना उनके चरित्र की विशेषता है।

गुलेरी जी के पत्र विचारतत्व की दृष्टि से उतने ही गम्भीर हैं जितनी उनकी साहित्यिक कृतियां। उनकी कृतियों की सबसे बड़ी विशेषता प्रसंगगर्भत्व है। जो बहुपठित तथा बहुश्रुत नहीं हैं, वे उनका असली स्वाद नहीं ले पाएंगे। यही स्थिति उनके पत्रों को लेकर भी है। उनके पत्रों में घर-परिवार, समाज तथा संस्कृति सब कुछ मिलता है।

अपने अनन्य मित्र पं० झाबरमल्ल शर्मा को लिखे पत्र (3. 9. 22) से ज्ञात होता है कि उनके जीवन के अन्तिम दिनों में क्रूर काल की छाया पूरे परिवार पर थी। अपने सम्बन्धियों को विदा करते-करते वे उन्नीस दिन बाद स्वयं भी कूच कर गए। उनकी 7. 6. 18 के पत्र की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो गई।

श्रीचंद्रधर शर्मा गुलेरी के तमाम पत्रों को पढ़ने के बाद एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि उनका पूरा नाम 'श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी' था न कि 'चन्द्रधर शर्मा गुलेरी'। इसी श्रीचाल पर उनके वंशजों में श्रीकर, श्रीधर तथा श्रीनिधि आदि हुए। उनके पौत्र डॉ० पीयूष गुलेरी ने अपने शोध-प्रबन्ध के आवरण तथा मुखपृष्ठ पर यही नाम दिया है, भले ही ग्रंथ के भीतर इसका निर्वाह नहीं हो पाया।

श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी के जिन लोगों के नाम लिखे पत्र उपलब्ध हैं उनमें पं० झावरमल्ल शर्मा, श्रीमती चन्द्रकुमारी, ठाकुर बिशनसिंह, पं० रामलाल, मा० नानकचन्द, आचार्य मेयो-कॉलेज, पं० दीनदयालु शर्मा, मि० जैनवैद्य, पं० हरिनारायण पुरोहित, रामकृष्णदास, श्यामसुन्दर दास, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं० मदनमोहन मालवीय तथा पं० कामताप्रसाद 'गुरु' के नाम उल्लेखनीय हैं।

गुलेरी जी के पत्र-साहित्य की एक झलक देने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र अविकल रूप में यहां दिए जा रहे हैं।

खुली चिट्ठी

खरे सज्जनों को खरी चिट्ठियां

(श्रीमान् आनरेबल पंडित मदनमोहन मालवीय बी० ए०, एल० एल० बी०)

मान्यवर महोदय,

आप बड़े हैं । बड़ों को पुरानी बातें याद होती हैं। हमारे एक पुराने दयालु मित्र खो गए हैं। वे हमारे बड़े कृपालु थे, हमारी हिन्दी के बड़े भारी सेवक और लेखक थे। उनका क्या आपको कुछ पता है ? कहां हैं ? क्यों एकान्तवास करते हैं ? उनकी बोलती क्यों बन्द हो गई है, इसका आपको पता है ? हमारे वे सौम्यदर्शन ब्राह्मण मित्र 'पंडित मदनमोहन बी० ए०, इस नाम को भूषित करते थे और 'दैनिक हिन्दोस्तान' के वे चिराग थे। क्या आपने कभी उन्हें देखा है ? क्या मालूम है वे कहां हैं ? अथवा क्या आपको उनका स्मरण भी नहीं ? कुछ लोग तो कहते हैं कि वे ही महाशय शैलूप की तरह नई भूमिका में 'आनरेबल मालवीय' के नाम से आ गए हैं । क्या यह भी सच है ? युक्तप्रान्त की कचहरियों में नागरी का चञ्चुप्रवेश करने वाला जो प्रसिद्ध है, वह और जो किसी काल में हिन्दी का लेखक था, क्या एक ही व्यक्ति की सविधि (=चित्र, यह शब्द हुजूर ही की तसनीफ़) है ? तो क्या वह महाशय धूपछाया के रंग का है ? वा 'अनेक रूप-रूपाय' का भक्त होने से 'रूपं रूपं प्रति रूपो वभूव' हो गया है ? या लोगों के चश्मे का रंग बदल गया ? या उसे हिन्दी लिखने में लज्जा मालूम होती है ? या इसमें यश नहीं मिलेगा ? क्या कारण है कि उसके हाथ में नड की ग्रामीण कलम न देखकर सभ्य फाउन्टेन पेन देखते हैं ?

क्या उसने और बातों में भी अपनी चाल बदल ली है ? अंग्रेजी में एक कहावत है, जो कथा के रूप में आपने सुनी होगी ।

महाराज ! एक शिक्षक को अपने इंस्पेक्टर के दौरे का भय हुआ और वह क्लास को भूगोल रटाने लगा । कहने लगा कि पृथ्वी गोल है । यदि इंस्पेक्टर पूछे कि पृथ्वी का आकार कैसा और तुम्हें याद न हो, तो मैं सूंघनी की डिबिया दिखाऊंगा, इसे देखकर उत्तर देना । गुरुजी की डिबिया गोल थी । इंस्पेक्टर ने आकर वही प्रश्न एक विद्यार्थी से किया और उसने बड़ी उत्कंठा से गुरु की ओर देखा । गुरु ने जेब में से चौकोर डिबिया निकाली (भूल से दूसरी डिबिया आ गई थी) । लड़का बोला, "बुधवार को पृथ्वी चौकोर होती है, और सब दिन गोल ।" वैसे ही जिन लोगों ने मालवीय जी की देखा देखी हिन्दी का पक्ष लिया था, जो मालवीय जी की हिन्दी को हिन्दी मानते थे, वे आज मालवीय जी की दूसरी डिबिया को देखकर, चकराते हुए कह रहे हैं—'सरल हिन्दी, उर्दू मिश्रित हिन्दी ।' जिज्ञासा यह है कि यह डिबिया, जेब में कहां से आ गई ? पहले ही से थी, या अब इसकी जरूरत पड़ी है ? और क्या पालसी में हिन्दी भी बुधवार को चौकोर, सप्ताह में छँदिन गोल हो जायगी ?

क्या यह भी आश्चर्य की बात नहीं है कि आपके-से कट्टर और पुराने कांग्रेसमैन के रहते भी युक्तप्रान्त में तीसरी कांग्रेस का नम्बर न आवे ? बम्बई तो पांच-पांच कांग्रेस कर डाले, और अयोध्यानाथ का देश तीसरी कांग्रेस का मुंह न देखे ? जस्टिस चन्द्रावर्कर जिस सप्ताह में कांग्रेस के सभापति चुने गए थे, उसी सप्ताह वे हाईकोर्ट के जज नियत हुए। इस पर एक मसखरे ने कहा था कि वे एक दिन तो भारतवर्ष के बिना मुकुट के राजा थे और दूसरे दिन विदेशी सरकार के तुच्छ (puny) दास हो गए। भगवान् आपके मनोरथ सुफल करें, यदि आपके भी प्यूनि (puisne) होने का मौका आवै, तो हम लोग तो बधाइयां देंगे ही, किन्तु आपकी तो मन-की-मन में रह जाएगी ? समय रहते कर लीजिए नहीं तो फिर स्मृति की दूरबीन उस प्रशस्त पण्डाल में विराजमान मालवीय को देखेंगी, और स्मर्ता का मन 'तिरश्चीनम-लातशल्यं' भोगेगा।

इधर आपकी संस्कृत यूनिवर्सिटी दोहद लक्षणों को धारण करेंगी। किन्तु इस काम में आपको दो बातों से बचना चाहिए। एक तो उस भिड़ों के छत्ते से, जो अपने हितकारियों को शत्रु कहा करता है, और दूसरे स्वयं काम न करके औरों के यत्नों में मीन-मेष करने वालों से। वे लोग आपको 'अन्तःशाक्ता बहिः शैवाः कहैं तो भी निडर होकर काम करते जाएं। किन्तु विचारी हिन्दी में आप अवश्य कुछ लिखें। भक्तवत्सल मदनमोहन ने एक बलवान् भक्त की प्रतिज्ञा के लिए अपना हठ छोड़ दिया था, आप तो चीज ही क्या हैं ? तथापि सुन छोड़िए—

आशाप्रतीते संगतं 'सुनृतांश्चेष्टापूर्त्ते' पुत्रपशूश्च सर्वान।
एतद वृंक्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नम् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥

और—

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुं मांगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥

आप शतायु हों। दिन-दिन आपका यश बढ़े।

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमावद, तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः।

—चिट्ठी वाला

(समालोचकः अगस्त 1904 ई०, पृ०17-20)

पं० हरिनारायण पुरोहित, जयपुर के नाम

ॐ नमः शिवाय।

खेतड़ी भवन, आबू
19-6-1906

माननीय प्रिय सुहृदवर और विद्वद्रत्न, प्रणाम।

आपका कृपा पत्र यहां पर मुझको मिला। पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। वह पुरुष नितांत अभागा है जिसे कुमार्ग से बचाने और सुमार्ग पर चलाने वाले "पापान्निवारयति योजयते

हिताय" मित्र न हों, और वह पुरुषपाश उससे भी अधिक अभागा है जो हितचिन्तक मित्रों के उपदेश को बुरा मानकर चिढ़ै। आपको उस पत्र के अमृतमय उपदेशों के लिए इष्ट धन्यवाद यदि मैं दूं तो वह लोकाचार माना जाय, इससे "अहं वेद्मि महात्मा न रामं सत्य पराक्रमम्" और "सन्ति सन्तः कियन्तः" कहकर ही चुप होता हूं।

मेरे पास न वह वचन चातुरी है, और न वह लेखमाधुरी है जिससे आपकी अनुकरणीय शैली का पथिक बन सकूं। तो भी जो वक्तव्य है वह सरल भाषा में उपस्थित किया जाता है।

"राक्षसी अक्षरों" वाली बात का मैं कायल हूं। परन्तु उस पत्र के वाहक सुलतान खां जी 'पाएरकाब' थे जबकि वह पत्र लिखा जा रहा था। मैंने हरिश्चन्द्र का अनुकरण करके यह घसीट नहीं पकड़ी। यह दुरुपाय वे लोग करते हैं जो जिनके वर्ण सुरूप नहीं होते और जो इष्ट मित्र से पंडितमन्य बनते हैं और आपके-से सुडौल अक्षरों को देखकर मन-ही-मन कुढ़ते हैं। परंतु यह आपकी शिक्षा "शिरसा गृहीत" और अनुसरणीय है।

आपने जो मेरे को महत्वपूर्ण बातों से फुलाना चाहा है उसका मैं कृतज्ञ ही नहीं, प्रत्युत विस्मित होकर शाकी हूं। यदि आप अतिस्नेह के चश्मे से मुझे न देखते तो मैं इतना अच्छा नहीं दीखता। परन्तु, यह तो आपके पत्र को पढ़कर "भिद्यते हृदयग्रन्थि," हुआ कि "काचमूल्येन-विक्रीतो हन्त ! चिन्तामणिर्मया, पश्चात्ताप भी होता है, विस्मय भी होता है। परन्तु—

"करो कोउ लाखैं करैया कोउ और है"

न मालूम इस जगन्नाटक सूत्रधार को क्यों मेरे को इस प्रपंच में डाल कर मार्ग च्युत करना था। अब मेरा यह तो दृढ़ विचार है कि एम० ए० की उपाधि अवश्य पाऊं, परमेश्वर ने चाहा तो आपके आशीर्वाद से 1907 में सफल हो जाऊंगा। सिविल सर्विस के लिए व्यय पास नहीं और सात वर्ष विलायत निवास का सत्र नहीं; रुड़की एन्जिनीयरी के लिए पांच वर्ष व्यतीत करने की ताब नहीं; और

"जब लग सांसा काय में, तब लग बीन बजाय।
बीन बिचारी क्या करै (जब) चलै बजावनहार ?"
आज्ञा और उपदेश लिखें।

चन्द्रधर

पं० दीनदयालु शर्मा के नाम

ॐ नमः शिवाय

अजमेर
3. 12. 06.

प्रणाम,

श्रीमान् का कृपा पत्र ता० 11 नवम्बर का मिला। प्रसन्नता हुई। आशा है अब चिरंजीव हरिहरस्वरूप जी सुप्रसन्न होंगे।

विद्यासागर जी को पंजाब शिक्षा-विभाग ने फिर अमृतसर बुला लिया है। परमेश्वर करे वे शीघ्र पक्की तौर पर यहां आवें। उनके बिना अंधकार है।

आप कलकत्ते पधारेंगे ?

मेरे ऊपर जो कृपा है, बनी रहे। सदा अपना जन समझें और जो सेवा उचित जान पड़ै, आज्ञा करें।

श्रीमान् ने मेरे नाम के आगे 'एम० ए०' और 'शास्त्री' लगा दिया है। पहले पद को मैं आशीर्वाद मानता हूं, जो परीक्षा से पांच-छः मास पूर्व ही आपके मुख से निकल गया। दूसरे में··· आशीर्वाद से कुछ अधिकता है, क्योंकि आपके···विद्यापारा बना दिया, तब केन गण्यो गणेशः ?

गुप्त जी मिलें तो मेरा आशीर्वाद कह दें। कभी-कभी उनकी दिल्लगी गज़ब कर जाती है। दशहरे पर उनने (द) रभंगे में श्री चरणों का मछलियों पर व्याख्यान होना लिखा था। अभी उस दिन मुजफ्फर पुर निवासी एक सज्जन मुझसे···उस घटना को अक्षरशः सत्य...

कृपा पात्र

श्री चन्द्रधर शर्म्मा

सौजन्य : नेहरू संग्रहालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली

रायकृष्णदास के नाम

(सौजन्य : स्व० मुरारीलाल केडिया, वाराणसी)

ॐ नमः शिवाय

जयपुर भवन
मेयो
अजमेर
2. 12. 11

'धीर' मान्यवर राय साहब, आशीर्वाद

आपका कृपापत्र पाकर चिन्ता और धन्यवाद की संसृष्टि हुई। आपने शारीरिक कष्ट पाया इससे प्रथम भाव और आप अब नीरोगता के मार्ग पर चल रहे हैं इससे परमेश्वर की ओर दूसरा। परमेश्वर आपको चिरायु करें ?

आपकी "तुकल्लुफ़-पूर्ण" बातों का उचित उत्तर यह वैदिक ग्रामीण ब्राह्मण दे नहीं सकता, उसके लिए क्षमा की जाय। "नहूसत का क़ौआ" यह महाविरा, हो चला है, गत मास की 'मर्यादा' देखिए। आशा है कि आप शीघ्र पूर्ण आरोग्य लाभ करेंगे। लेख को जब हिन्दी-आर्नल्ड पसन्द करें तब बात है—

गाँव बसाया बाणियें
बस जाये जद जाणिये !

अब 'सरोज' के खिलने के मार्ग में कठिनाइयां न रही होंगी। कुछ उसके 'प्रकाशक' को ही 'मुद्रक' कहना पड़ता है ! प्रिन्टर का अनुवाद 'विकासक' कीजिए, 'मुद्रक' नहीं।

मुझे गौरीशंकर प्रसाद जी से कुछ लिल्लाही बुग़ज नहीं है। वे प्रसन्नता से काम करें।

परन्तु फिर परस्पर वैमनस्य-कारिणी पार्टी न खड़ी होनी चाहिए। मेरे प्रस्ताव जैसे निरपराध विषय पर विवाद क्यों हुआ ? पाठक जी लिखें तो जान पड़े।

ओझाजी दिल्ली गए हैं और श्रीमती मेरी महारानी के अजमेर ता. 21 को आने के कारण वे व्यग्र हैं। उस पीछे उनसे पूछ कर उत्तर लिखूंगा।

'कलकत्ते आएंगे'—इस प्रश्न का क्या अर्थ है ? यदि राजराजेश्वर के वहां रहने पर, तो 'नहीं' और यदि अग्रिम साहित्य सम्मेलन पर तो—'आप के साथ'

आपका

श्री चन्द्रधर शर्म्मा

शुक्लजी और बाबू साहब को 'स्मरण'—पाठक जी को विशेषतः।

श्रीमती वह महिला का लेख संग्रह ही नहीं मिला, वाचस्पत्य तो कहां ?

रायकृष्णदास के नाम

मेयो कालेज अजमेर

डाकखाना गुलेर

जिला काँगड़ा (पंजाब)

7. 6. 18.

मानवीय रायकृष्णदास साहब, आशीर्वाद।

मध्यम का विवाह निर्विघ्न हो गया। आपके लेख के लिए तथा टीके के लिए अनेक धन्यवाद। मैं यहां 10/12 दिन और हूँ।

'प्रत्युपकार' कविता यहां पहुंची थी, कुछ पढ़ी, अब तक झमेले में था, अब पूरा पढ़कर अपना अभिप्राय लिखूंगा।

काशी को मैं नहीं भूला, न भूल सकता हूं, न आपको भूला। सदा काशी का स्मरण रहता है पर 'या भूखे पापी पेट को नाथ वहां कैसे भरें'।

काशीमेव गमिष्यामि मरिष्यामि तत्र वै।

सदैव चित्तयन्मेवं काशीवासफलं लभेत्॥

आपके दर्शन ज्यों ही मौका मिलेगा करूंगा। आपने दस महीने का क्या मज़ाक किया है। क्या फिर मुझे काशी में आकर भी गर्भवास करना पड़ेगा, वहां तो लोग मोक्ष के लिए आते हैं, न कि गर्भवास के दस महीने के लिए, जरा इस पहेली को तो बुझाइए।

आपका

श्रीचन्द्रधर शर्मा

जयपुर भवन'
मेयो कालेज,
अजमेर
मिति······अक्टोवर 1/20······197

मानवीय राय साहव, आशीर्वाद,

आपके कविमित्र मैथिलीशरण जी ने 'पुस्तक' का तकाज़ा किया है। मैं अवश्य कह आया था और लिखूंगा, किन्तु अभी समय न पा सका। झंझट इतने अधिक हैं कि क्या कहूं जो समय मिलता है वह काशी की ही सेवा में बिताता हूं। आप जानते ही हैं।

एक अनधिकारी ने 'रूपम्' की दूसरी संख्या में मोलाराम के एक चित्र के बारे में कुछ 'अनधिकार चर्चा' की है। आप उस पर हँसे होंगे कि चितारी के विषय से कोरे वैयाकरण का यह साहस ! आपके विनोद के लिए ही वह लिखा गया था।

नवरात्रों में मैं काशी आ रहा हूं। हिन्दी व्याकरण संशोधन समिति में विठाने को कहते हैं। सभा के वार्षिकोत्सव में भी आने को कहते हैं। आपके दर्शन होंगे ही तथा सदालाप भी। एक वात की क्षमा मांगना चाहता हूं। आपका हसितांग भवन वहुत दूर है। गुरूगृह भी दूर है तथा सभा भी। प्रतिदिन कमेटी में जाना आना है। सुभीता चाहता है कि कहीं सभा के समीप रहूं। आपकी तीन लोक से निराली मथुरा में नहीं। आप कुछ अन्यथा न समझिएगा। एक आध दिन तो आपके यहां आ धमकूंगा ही, मिलना मिलाना भी प्रायः होगा। रहने के लिए कूंडा किधर ही डाल लूंगा, क्यों, आज्ञा है न ?

पाठकजी को नमस्कार साहित्यमुटिया साहव गाइड बनने को तैयार रहें। गाड़ी आदि साफी और मिल ही जायेगी, मोटर तो अभी आपने न ली होगी।

आपका
श्रीचन्द्रधर शर्म्मा

सौजन्य : स्व० मुरारी लाल केड़िया, वाराणसी

पं० झाबरमल शर्मा के नाम

ॐ नमः शिवाय

विजय नगरम महल
भेलू पुरा
श्रीकाशी जी
3.9.22.

प्रिय झाबरमल जी,

एक लम्बा पत्र मिला ही होगा। मध्यम के प्रयाण के 11 वें दिन जगद्धर की ड़ेढ़ वर्ष की कन्या गई। मध्यमा विधवा तथा क्षेमा लायलपुर गए। मैं रुगणा स्त्री के साथ यहां पहुंचा, उधर मध्यमा रुगण हुई, छोटी का गर्भ विकृत हुआ, छोटी बीमार होकर काशी पीहर आई,

महीना भर बीमार रही। भाद्र शुदि नवमी को उसका काशीवास विकृत गर्भ से हो गया। कहिए कैसा कर्मयोग है। क्या साहित्य सेवा हो, क्या पूजन-ध्यान और क्या मित्रों का पत्रालाप। हां, आज कार्ड मिला है कि मिश्र जी रामरूप जी वैद्य के साथ कलकत्ता जाते हुए कल यहां आ रहे हैं। चलो कुछ घंटे कोई अपना दुःखड़ा रोने को मिलेगा। उनके द्वारा सन्देश भेजूंगा। आशा है आप प्रसन्न हैं। छन्नूलाल मिलता रहता है—वही जिसे ज्वालानाथ जी आप से मिला लाए थे।

आपका

श्रीचन्द्रधर शर्मा

To

Pandit Jhabarmal Ji

c/o

The Calcutta Samachar

8/1, Ram Kumar RakshipLane

Chainti Path, Bara Bazar, Calcutta.

सौजन्य : पं० झाबरमल शर्मा के प्रपौत्र पं० श्यामसुन्दर शर्मा, (गुलेरी जी का अन्तिम पत्र)

'अभ्युदय' पत्र के सम्पादक के नाम

क्या आप मुझे कृपा करके यह आज्ञा देंगे कि मैं आपके प्रसिद्ध पत्र के द्वारा मेरे उन कृपालु मित्रों को हृदय से धन्यवाद दूं कि जिनने अपने हृदय की उदारता से मेरे पितृवियोग के दारुण दुःखावसर पर अपनी सहानुभूति प्रतिनिधि पत्र वा तार द्वारा प्रकाशित की। मेरे जीवन के इस परम दुःखमय अवसर में उनकी इस समवेदना का मैं बहुत ही उपकृत हूं, उनके आश्वासन पत्रों ही ने मुझे मानो शोक समुद्र से बांह पकड़कर उबारा है। मैं सबको पृथक्-पृथक् पत्र लिख रहा हूं परन्तु सबके पास मेरे उत्तर भेजने में समय लगेगा।

श्री 108 श्रीतात-चरणों के ब्रह्मलीन होने से मैं और मेरा परिवार ही छत्र रहित होने से दुखी है ऐसा नहीं, प्रत्युत संस्कृतज्ञ और धर्मप्राण समाज मात्र को उनका अभाव, अभाव जान पड़ता है। यह मेरी मन्द अवस्था में मेरे ऊपर होने वाली सहानुभूति की वर्षा से प्रतीत होता है। अतएव मुझे 'भारत' के श्लोकार्द्ध के अनुसार आश्वासन है कि—

नं जानपदिकं दुःखमेकः शोचितुमर्हति।

हिन्दी सम्वाद पत्रों के सम्पादकों को मैं कितना धन्यवाद दूं कि जिनने मेरी तुच्छ नगण्य सेवाओं के नाते मेरी इस विपद को अपना लिया और मुझे सान्त्वन किया! मैं सदा उनका कृतज्ञ रहूंगा। हाथ जोड़कर सबसे यही प्रार्थना है कि मुझ और मेरों पर सदा कृपा रखें और मुझे यह आशीर्वाद दें कि श्री 108 श्री महाराज-सी पद्धति पर चलता रहकर उनका पुत्र कहलाने का पात्र बना रहूं।

श्रीचन्द्रधर शर्मा गुलेरी

अभ्युदय : 19 फरवरी, 1911 के अंक में प्रकाशित
सौजन्य : स्व० मुरारीलाल केडिया, वाराणसी

बाबू श्यामसुंदर दास के नाम पत्र

जयपुर भवन,
मेयो कालेज,
अजमेर,

कांशी मिति 13-4-22-

प्रियवर बाबू साहब,

शुक्लजी के बुद्धचरित के पुरस्कार के विषय में आपने मेरा मत पूछा था। मैंने इस विषय का विचार किया किंतु निश्चय स्थिर करने में कुछ कठिनता पाई क्योंकि कविता है, कोरा अनुवाद नहीं हैं और लगभग मौलिक ग्रंथ है। मूल के पृष्ठ 238 का हिंदी अनुवाद 230 पृष्ठों में हुआ है। भूमिका के लगभग 40 पेज हैं—मोटे भाव से 280 हुए। हुएनसांग के अनुवाद का आपने 15 फार्म तथा सुलैमान का 1/-प्रति पृष्ठ दिया है। कविता के मानसिक श्रम का अनुवाद स्थिर नहीं किया जा सकता—साधारण प्रकाशक के लिये तो अनुवाद और मौलिक ग्रंथ एक ही हैं किंतु सभा के-से विवेकशाली लोगों को सब धान बाईस पसेरी नहीं तोलना चाहिए। मेरी संमति में 500/- कुल पुरस्कार देना ठीक होगा—भूमिका भी मौलिक है, उसे पृथक् करने की आवश्यकता नहीं; यह सब 2/-पेज से कम पड़ा।

आपका
श्रीचन्द्रधर शर्म्मा

सौजन्य : स्व० मुरारीलाल केड़िया, वाराणसी

महाकवि कुमारदास की दृष्टि में हिमालय

□ सत्यपाल शर्मा

हिमालय, कवियों और लेखकों का सर्वाधिक प्रिय पर्वत है। आध्यात्मिक आनन्द, भौतिक सुख और मानसिक विश्रान्ति की तो यह खान है। हिमालय का तो स्मरण मात्र ही हमें आत्मिक ऊंचाइयों और स्वच्छ निर्मल प्राकृतिक जीवन का साक्षात्कार कराने लगता है, अतः इसके गुण-गान और अर्चन-स्तवन की एक सुदीर्घ परम्परा का सदैव चलते रहना बिल्कुल स्वाभाविक है। हमारे अध्यात्मवेत्ता मनीषियों, भावप्रवण कवियों, मनन-शील मुनियों, भक्तिभाव सम्पन्न पौराणिकों और प्रतिभासम्पन्न कलाकारों ने इस पर्वतमाला को जो गरिमा प्रदान की है, वह मानों भारतीय हृदय की सौन्दर्य के प्रति स्नेहमयी श्रद्धांजलि है।

सुषमा का दिगतन्तव्यापी प्रसार

हिमालय को हमारा कवि समुदाय आरंभ से ही देवतात्मा मानता चला आ रहा है। भव्य रुचिरता की साकार प्रतिमा यह पर्वत महाकाव्यकारों की दृष्टि में तो काव्यप्रतिभा के लिए एक स्वतन्त्र और उत्तम विषय रहा है। हमारे यहां तो हिमालय शब्द भी मंगलवाची माना गया है। सातवीं शतब्दी ईसवी में विद्यमान, संस्कृति के विख्यात कवि कुमारदास ने भी इसे बिल्कुल इसी रूप में देखा है। अपने महाकाव्य 'जानकीहरणम्' में वह इस पर्वत का बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते हैं। यह पर्वत उनकी दृष्टि में सुख, सुषमा और समृद्धि का भण्डार है। इस पर पाए जाने वाले प्राकृतिक दृश्य मन और प्राणों को शान्ति प्रदान करने वाले हैं। यह झरझराते झरनों उच्छल प्रपातों और कलकलनिनादिनी नदियों की मनोरम भूमि है। कुमारदास कहते हैं कि हिमालय के झरने शरात्री के उत्तरीय की तरह डोलते और डगमगाते हुंए नीचे गिरते हैं। श्वेत हार की तरह गौरवर्ण यह पर्वत हाथियों की चिंघाड़ों से गूंजता रहता है। नदियां इस के घने निकुंजों की छलनी से छनकर बहती हैं और इसके सिर पर विराजमान नक्षत्रमण्डल, खिले हुए फूलों के उद्यान जैसा लगता है। स्पष्ट है कि हिमालयी प्रदेशों के ऊपर पाए जाने वाले धूल-धुंए से रहित स्वच्छ नीले आकाश की रूपश्री की चामत्कारिक झलक दिखाने के लिए ही महाकवि ने ऐसा वर्णन किया है। वह अन्यत्र कहते हैं कि हिमालय के झरने अपनी श्वेतच्छटा और दमकती आभा से चन्द्रमा को भी लज्जित करते हैं। इन झरनों का शुभ स्वच्छ जल स्फ़टिक शिलाओं पर गिरकर छितरा जाता है और फिर भी दिखाई नहीं देता, परन्तु कन्दराओं में जो इसकी गंभीर ध्वनि गूंजती है, वह इसका परिचय देने के लिए काफ़ी होता है—

स एष शीतद्युतिहासि निर्झरे विकीर्णवारिः स्फ़टिकोपलोच्छयः।
गुहानिबद्ध प्रतिशब्द भैरवैः अलक्षितोऽपि ध्वनिभिर्विभाव्यते ॥ (20. 44.)

सरकते सूर्यरथ का साक्षी

महाकवि कुमारदास कहते हैं कि 'सूर्यसारथि को डर था कि रथ के वेग से पूर्वत शिखर कहीं टूट-फूट न जाएं इसलिए उसने घोड़ों की रास ऐसी खींची कि उनकी गर्दन ही टेढ़ी हो गई :'—

वाजिन: प्रग्रहाकृष्टखलीनावक्रकन्धरान् ।
एकतो जनयत्यद्रिपातभीत्यार्क सारथौ ।। (2. 41.)

स्पष्ट है कि यहां वह अन्यापदेश से हिमालय के शिखरों की ऊंचाई का गुणगान ही कर रहे हैं। हिमालय विश्व की अन्य पर्वतमालाओं की अपेक्षा इस बात में विशिष्ट है कि इसमें संसार की सबसे ऊंची और सुन्दर चोटियां पाई जातीं हैं। इस पर्वत की गगनचुम्बी ऊंचाईयां, आकाश के चंदोवे के नीचे ऊंचे स्तम्भ स्थापित करती-सी लगती हैं और इसकी तुषारमण्डित ठंडी घाटियों के ऊपर-ऊपर मन्द गति से चलता सूर्य इसकी चोटियों पर रुक-रुक कर विश्राम करता प्रतीत होता है। हिमालय के हिमाच्छादित उत्तुंग शैलशिखरों और भयंकर शीत से सिकुड़ी लम्बी-ठंडी छायाओं से संत्रस्त संकरी घाटियों में सूर्यरथ का उन्मुक्त गमन तो प्रतीत ही नहीं होता। सूर्या-तप की तीखी तपन जहां अनुभव न होती हो ऐसे स्थल के विषय में कविवर कुमारदास का यह कहना कि यहां बड़े वेग से गिरती नदियों के पछाड़ खाते हुए प्रपातों से सूर्य भी झंकृत हो उठता है, उचित ही है—

स्फुरन्नगशिरस्त्यक्तैरुन्नदन्नदनिर्झरै: ।
स्पृष्टे पूषणि झंकारं घोरमातन्वति क्षणात् ।। (2. 40)

हिमालय के इन भूभागों में अकसर दिखाई देने वाली, बादलों और शैलश्रृंगों की आंख-मिचौनी भी कम आकर्षक नहीं होती। कविवर कुमारदास ने गैरिक धातुओं से लिप्त रक्तवर्णी अधित्यिकाओं वाले हिमालय के शिखरों का वर्णन करते हुए कहा है कि गिरिशिखरों के मध्य मंडराते रहने वाले कामरूप और कामचारी बादल कभी तो वनखण्डों में वृक्षों के पुष्पस्तवकों के समान रूप धारण कर लेते हैं और कभी काले पर्वतों के पार्श्वों में लुप्त हो जाते हैं। कभी वे शुभ्र प्रभा धारण कर स्फटिकवर्णी पाषाणखण्डों पर (पताकाओं की तरह) फहराने लगाते हैं—

शिखासु पुण्यप्रकरो महीरुहां मुहु: किलाधोऽञ्जनशैलभित्तिषु ।
क्षणं विनष्ट: स्फटिकोपले घन: सितप्रभोयं विधूयते ।। (20. 45.)

पर्वतशिखरों के मध्य भाग में तेज़ गति से उड़ते हुए बादलों और हवाओं से उड़ने वाली धूल के भी कुमारदास ने बड़े यथार्थ शब्दचित्र खींचे हैं। एक स्थल पर वह कहते हैं कि धातुओं से समृद्ध इस ऊंचे शिखर पर से जब बादल गुज़रते हैं और जब वायु चारों और धूल के गुबार उड़ा रही होती है तो यह पर्वत अग्नि के ढेर के समान चमकने लगता है—

विमुच्यमानस्सितवारिदैरसौ विभाति धातूपलराशिकुञ्छित: ।
समन्ततो भस्मानि भासुरप्रभ: प्रयाति वातैरिव वह्निसंचय: ।। (20.46)

पार्वती-परमेश्वर की क्रीड़ास्थली

प्राचीन भारत के अन्य कवियों के समान ही कुमारदास ने भी हिमालय को 'हर स्थान'

अर्थात् भगवान शिव का स्थायी आवास कहा है और इस शिव की प्राप्ति हेतु पार्वती को तप करते दिखाया है। ध्यान रहे कि शिव के लिए समर्पित पार्वती इस बात का प्रतीक है कि पर्वतीय सम्पदा शिवत्व अथवा मानव कल्याण की साधिका है। अलकापुरी को अपने ऊपर धारण करने वाली अधित्यिका को शायद इसीलिए कवि ने पार्वती का-सा शरीर धारण किए रहने वाली कहा है—

'अधित्यिकासौ हिमशैल संभवावित्ति गौरेभगि मनोहरं वपु।' (20.42.)

शिव, मानव कल्याण और मारिवल्य के प्रतीक हैं और पार्वती, इस शिव को सत्ता को सार्थक बनाने वाली पर्वतीय संपदाओं का बोध कराती है अतः शिव का सान्निध्य और सारूप्य प्राप्त करने के लिए की जाने वाली, पार्वती की तपश्चर्या का वर्णन बड़ा स्वाभाविक है। पार्वती, दैहिक रूपलावण्य और शालीनता की खान है और यह हमें सौन्दर्य दृष्टि प्रदान करती हुई हमारी चित्ता-वृत्तियों में सामञ्जस्य स्थापित करती है। इससे हमें सही मनुष्य बनने की प्रेरणा मिलती है।

कुमारदास ने अपने काव्य में जिन पुरातन काव्यरूढ़ियों का प्रयोग किया है उनमें एक यह भी है कि हिमालय के शिखर मूल्यवान धातुओं से भरे हैं। वह कहते हैं कि 'इन पर्वतशिखरों में विश्वम्भर की सम्पत्तियां छिपी हुई हैं। भगवान शिव इन सम्पत्तियों का उपभोग करते हैं अतः उन्हें ये शिखर बहुत प्रिय हैं। कुमारदास का यह कथन अपने में एक बहुत बड़ी सच्चाई लिए हुए है। शाश्वत हिमरेखा के ऊपर के सभी पर्वत शिखर राशिभूत जल में धन-धान्य की सम्पदाएं लिए रहते हैं। ये हिमश्वेत शैल न केवल शिवत्व (जनकल्याण) के साधक हैं बल्कि मनुष्य समुदाय वनस्पति वर्ग तथा नाना प्रकार के प्राणियों के लिए साक्षात् शिव हैं। कुमारदास कहते हैं कि जब पार्वती हिमालय के शिखरों पर तप कर रही थी तब निकटवतर्ती सूर्य चन्द्रमा के समान सुशोभित होता था ताकि उसे कोई कष्ट न हो। इस सूर्य का मध्य भाग तो मानों पार्वती की श्यामल आंखों से ही श्याम हो गया था।' कवि का यह वर्णन बड़ा साभिप्राय है क्योंकि सूर्यातप इन पर्वतीय भूमियों में जितना सुखद, सुन्दर और आह्लादकारी होता है उतना अन्यत्र कहीं नहीं होता। क्रूर और वक्र दृष्टि माना जाने वाला सूर्य मानो पर्वत की शीतल श्यामलता को सहर्ष अंगीकार करता हुआ मन्द-मन्द चरणों से आगे बढ़ता है।

सिद्धों और तापसों की साधना भूमि

हिमालय की इस रमणीयता और यहां के वातवरण की इस सुखदता से प्रभावित होकर लोग सहज में ही इसकी ओर खिंचे चले आते हैं। यहां प्राप्त होने वाला मौन तथा शान्तिमय एकान्त सिद्धों और तापसों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। रामायण, महाभारत तथा संस्कृत के अन्य महान ग्रन्थों में हिमालय का इसीलिए एक पावन तपोभूमि के रूप में गौरवगान हुआ है। कविवर कुमारदास का भी यही विश्वास है कि हिमालय के दुर्गम प्रदेशों में सिद्धों और यक्षों का वास है। वह कहते हैं कि व्रती लोग तपःसिद्धि के शुभ परिणाम के लिए हिमालय की अधित्यिकाओं का श्मशान के समान वरण करते हैं—

सधातुकूट धृतविश्वसंपदः शिवोपभोग प्रणयस्य भाजनम्।
इमं तवसिद्धिगुणाय वृष्वते श्मशानकल्पं व्रतिनो विरागिणः॥ (20.36)

लोकविश्वासों की जन्मस्थली

इस पर्वतीय भूमि के विषय में बहुत प्रचीन काल से ही कुछ विचित्र लोक विश्वास चले

आ रहे हैं। कविवर कुमारदास ने भी प्राचीन कवियों के समान इन विश्वासों को खुलकर अभिव्यक्ति दी है। इनमें सर्वाधिक प्रचलित यह है कि हिमालय, देव, यक्ष गन्धर्व, नाग, किन्नर, गुह्यक, विद्याधर आदि मानवेतर जातियों की भूमि है। इसका मुख्य कारण संभवतः यह है कि निरन्तर विकासमान और परिवर्तनशील मैदानी सभ्यताओं की तुलना में अपेक्षाकृत मन्द-मन्द और स्थिर जीवनचर्या तथा वर्जनाविहीन सामाजिक जीवन ने हिमालय वासियों को शेष संसार से कुछ पृथक सा कर दिया है। इसके अतिरिक्त विशुद्ध प्राकृतिक वातावरण में जिए जाने वाले निष्कपट निश्छल और अकृत्रिम जीवन ने भी पर्वतीय लोगों को अन्य भूभागों के लोगों से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया होगा। फिर दूरस्थ-दुर्गम घाटियों में पाए जाने वाले जीवन के साथ लम्बे समय तक सम्पर्क सूत्र कटे रहने के कारण भी कुछ इस प्रकार के विश्वास मनुष्य के मानसपटल पर अंकित हो गए होंगे। इन क्षेत्रों का भ्रमण करने वाले पर्यटकों ने अपने यात्रावृत्तान्तों को चमत्कारिक और आकर्षक बनाने के लिए हिमालयवासियों को प्रायः विचित्र रूप में प्रस्तुत किया है। कुछ विदेशी पर्यटकों के वृतान्तों से यह बात प्रमाणित होती है। कुमारदास ने पुराने लोक विश्वासों को अपने काव्य में ज्यों का त्यों रख दिया है। कालिदास की तरह उनका भी विश्वास हैं कि हिमालय के दुर्गम प्रदेशों में सिद्धों और यक्षों का वास है। वह यहां देवताओं का वास भी मानते हैं। उन्होंने सिद्ध वनिताओं तथा देववांगनाओं के रतिस्थल चट्टानों का स्पष्ट वर्णन किया है—

लतावितानावरणे शिलातले गिरावमुष्मिन् सुरसिद्धयोषिताम्
सुवृत्तकांचीगुणघृष्टिरेखया वदन्ति वृत्तं सुरतं वनेचराः ।। (20.50)

उन्होंने हिमालय स्थित किन्नर देश के किन्नरों को बादलों से ऊपर और नीचे घूमते रहने वाले कहा है। जब सूर्य की किरणों से उनके पैरों के तलुवे जलने लगते हैं तो वे चोटियों पर से कूद कर नीचे जल से भरे बादलों के पास खड़े हो जाते हैं—

घनस्य तिष्ठन्ति ततो धृताम्भसः तटे पतन्तशिशरसो महीभृतः ।
अमी श्वेरूहर्ध्वमुखांशुवन्हिना पराहतः पादतलेषु किन्नराः ।। (20.46)

हिमाचल प्रदेश की सांगला, कल्पा, हांग-रांग, लिपा, स्पीति आदि घाटियों के जनजीवन और प्राकृतिक परिवेश को सूक्ष्म दृष्टि से देखने वाला कोई भी व्यक्ति उक्त कथन की सच्चाई में सन्देह नहीं करेगा। हिमाचल प्रदेश के किन्नर-कैलाश, श्रीखण्ड, हंसबिशुन, मणिमहेश आदि शिखरों के आस-पास पाए जाने वाले भूभागों पर बादल वास्तव में यवनिकाओं की तरह लटकते रहते हैं और इन क्षेत्रों में रहने वाले लोग भी कभी बादलों के ऊपर होते हैं, कभी मध्य में और कभी बिल्कुल नीचे रह जाते हैं। कविवर कुमारदास ने हिमालय पर स्थित अलका का वर्णन करते हुए कहा है कि यह नगरी अपने स्वामी कुबेर के आग्रह के कारण सजी-धजी रहती है। बादल, इसकी गुफाओं पर पर्दों के समान लटकते रहते हैं—

पति प्रसावावरमण्डितालका गुहाननासक्तगलत्पयोधरा (20.42)

हिमालयी जनजीवन बादलों के पर्दे से आवृत्त पाषाणकन्दराओं के समान एक लम्बे

समय तक शेष संसार की आंखों से छिपा रहा है। बहुत कम लोग जानते हैं कि यवनिकाओं के के पीछे ढका-छिपा यह पर्वतीय जीवन कितना सुन्दर, सरल सहज, और शान्त है। निश्छल और निर्मल जीवन वाली यह पर्वतीय संस्कृति वास्तव में देवसंस्कृति है और सारे संसार के लिए अनुकरणीय है। कुमारमंभव के प्रथम श्लोक पर टिप्पणी करते हुए महामनीषी डा० राधाकृष्णन ने ठीक ही कहा है कि 'हिमालय की तलहटी में जिस संस्कृति का विकास हुआ, वह दुनिया भर की संस्कृतियों का मापदण्ड है।' यह संस्कृति सहज और प्राकृतिक होने से पूर्णतया आध्यात्मिक है। भारतीय कवियों ने बहुत पहले ही इसके सही स्वरूप को पहचान लिया था।

[179-श्यामनगर धर्मशाला (हि० प्र०)]
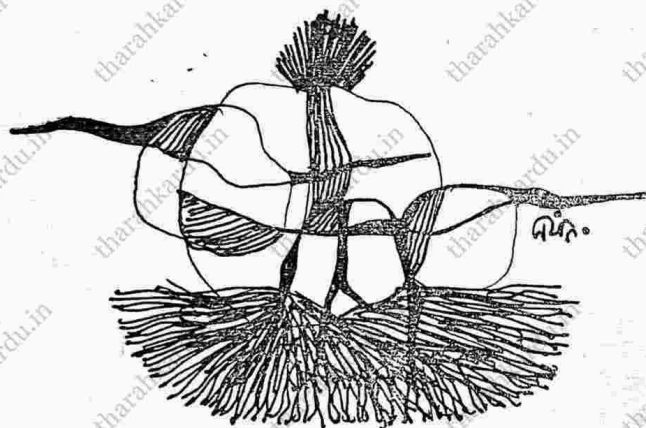
कहानी

डग्याली की रात

□ श्रीनिवास जोशी

भादों के आकाश में नीलापन गहराने लगा था। नूपा जानता था कि यह नीलिमा अब बढ़नी शुरू होगी और असौज-कातक में परमु के उस नीले दुपट्टे जैसी हो जाएगी जिसे पहनने पर उसका चिट्टा रंग और उभर आता है। धूप भी तब कड़क मज़ेदार होगी। चश्मे वाले बाबू ने उससे बोला था कि असौज-कातक की धूप में तो गेंडे की खाल भी सूखती है। वह बोलते थे गेंडा मोटी खाल का जानवर होता है जिसकी थूथनी के ऊपर एक सींग होता है, जो हड्डी का नहीं होता। उसे चश्मे वाले बाबू के इस मजाक पर गुदगुदी हुई। वह अपने से ही बोला, "थूथण के ऊपर बालों का बना सींग। पशु हुआ कि परेत।" इस पर उसे हंसी आ गई। वह कुछ देर और हंसता पर उत्तर दिशा के आकाश में बुढ़िया ने आज फिर बादलों की बड़ियां डाल दीं थीं। "उत्तर दिशा के बादल तो बराग जैसे जालम होते हैं—उल्कापात करते हैं—उन्हें देखकर हंस सकता है कोई ! भादों का महीना भी बाईस्कोप में चलती तस्वीरों जैसा होता है—अभी धूप, अभी बादल, अभी बरखा भरी खड्ड, हरा जंगल, फिर नीला आकाश, फिर कुहैट, फिर बरखा। नूपे ने इधर-उधर गर्दन घुमाई। चारों दिशाओं में बादलों की सेना बढ़ रही थी आकाश पर कब्जा जमाने। जितनी टुकड़ियां समा सकती थीं समा गईं वहां। बाकी नीचे उतरने लगीं धरती की ओर। धरती से भी कुहैट ऊपर को उठी और फिर दोनों दो खड्डों के मिलते पानी की तरह एक हो गई—पता ही नहीं चलता कौन धरती से उठी, कौन आकाश से उतरी।

मेघीली सफेदी ने सब कुछ ढांप लिया तो नूपे को लगा दुनिया सिमटकर केवल उसका घर रह गई है। वैसे तो उसकी खुली दुनिया भी कभी विशाल न थी—ओबरे समेत तीन कमरों का घर, तीन बीघे दो बिस्वा ज़मीन, जिसमें घासनी शामिल थी। लछमी गऊ माता जो सावन भादों में चिकनी चुपड़ी दर्शनीय हो जाती थी, अस्थियों के ऊपर चढ़ी चमड़ी। शहर के बाबूजी जो चश्मा लगाते थे, साफ चिट्टे कपड़े पहनते थे, जिन्हें वह रोज दो पाइया दूध दे आता था। और गांव वाले जिनमें बामण, कनैतों के अलावा उसके साथ तीन टोल कोलियों के भी थे। पारके साल तक उसका बापू भी उसकी दुनिया का हिस्सा था।

भादों के काले महीने ने एक बार फिर जब नूपे की इस दुनिया को सफेद लिफाफे में बन्द कर दिया तो उसे घबराहट-सी होने लगी। एक अजीब सी चुप्प वातावरण में तैर रही थी—खड्ड के बहते पानी की आवाज़ को भी यह चुप्प निगल गई थी। नूपे को लगा सारे ब्रह्मांड में स्वयं नूपा, लछमी और उसका घर है—बस, और कोई नहीं। अभी मेघनाद के तीरों-सा बरसता

पानी आएगा और वे बचे-खुचे भी बह जाएंगे उसी में। आज तड़के ही उसने देखा था—बणोग के जंगल के ऊपर जहां से सूरज निकलता है सभी बादल लाल-लालपड़े हुए थे। उसका बापू कहा करता था—सवेरे जब इस दिशा में बादल पके हुए होते हैं तो पानी शल-शल कर बरसता है। बापू की कही बातें जब वह याद करता तो उसे बड़ा आनन्द आता था। पर इस बात का अफसोस भी रहेगा उसे जनम भर कि बापू के करम को वह हरिद्वार न जा सका था। सन्तोष इस बात का था कि ठाकुर से 151 रुपये कर्ज लेकर वह पंडतजी को दे आया था जिन्होंने रीति से कारज करवा दिया और बता दिया था कि उसका बापू पितर-लोक पहुंच गया है। एक बार फिर उसे चश्मे वाले बाबूजी की कही बात याद आ गई। उन्होंने कहा था कि गोरे लोग चांद पर आदमी भेज रहे हैं। उसने सोचा वैसे तो ऐसा हो नहीं सकता पर मान लो ऐसा हो ही गया तो पितरों का क्या बनेगा। ये गोरे लोग होते तो मुसण्डे हैं—हमारे राणा साहेब को भी 'जैं-देया' नहीं बोलते और राणा साहेब तो हमारे जामू देवता का ही भाई होते हैं। जब इनको देवता का ही भय नहीं तो पितरों से क्यों डरेंगे। तभी गड़गड़ाहट हुई और नूपा पितर लोक से भूलोक में उत्तर आया।

पानी—जितना तेज बरसेगा उतने ही नालू नूपा के घर की छत से बह निकलेंगे। उसके जगह-जगह टल्लू लगे पाजामे से मेल खाती छत में भी स्लेटों के बीच कहीं कनस्तर का मुंह ठुंसा हुआ था तो कहीं डालडा का फाड़ा डिब्बा पसरा पड़ा था। न तो पाजामे के टल्लू सर्द हवा को जिस्म से दूर रख सकते थे और न ही छत के टिनड़ू टपकते पानी को रोक सकते थे। दोनों बस एक ही काम करते थे—नूपे के नंगेपन को ढांप लेते थे।

चारों तरफ की सफेद कुहैट रामलीला के ठीए से उठते पर्दे की तरह धीरे-धीरे ऊपर की ओर सिमट गई और आकाश के घनेरे बादलों में समा गई। सफेद खोल जब नूपे के घर से उठ गया तो घर अपने आप ही जुड़ गया कलियाते हरे जंगलों से, दूर शहर के धुले-पुंछे मकानों से, मक्की की हरियाली लिए खेतों से—और नूपा भंवर गया मक्की की खेत में गुड़ाई करती परमु के गिर्द। परमु खिलने की हर चोट से बेकार पौधों को निकालकर, बढ़ने लायक पौधों का फासला सही करती जा रही थी—घास पतवार छांट रही थी, दुपट्टे को उतार उसने उसे धाठू की तरह सिर पर लपेट रखा था ताकि लहराता दुपट्टा उसके काम की गति को कम न कर दें। बड़े-बड़े रंगदार छापे वाले हरे सुथण-कुर्तु में परमु नूपे को खेत के किनारे उगे फूल के बूटे-सी लग रही थी। नूपे की अधमरी जिन्दगी में कुछ एक ही छलकते क्षण आए थे जिनमें से कुछ उसे याद हो आया। माघी ने तब बापू से कहा था—

"सुन त्वारसू। परमू मैंने नूपे को दे देणी है।"

"मूआं तू, बच्ची दे देणी है।"

"ज्वाण नी होना इन्होंने। दो दयाली निकली की दोनों तैयार।"

नूपे ने सोचा तब से तो अब तक तीन दिवाली निकल चुकी हैं—चौथी के लिए भी अखरोट जमने लग गये हैं। बापू के अकस्मात सुरगवास से काम रुक गया। दिवाली का शुभ पर्व मना लूं तो परमु को घर ले आऊं। तभी उसने देखा पच्छम का जंगल नहा गया है और बादलों को धरती से जोड़ती पनीली तारें उसके गांव की ओर तेजी से बढ़ रही हैं। नूपा अपने घर की छत पर चढ़कर स्लेट और टीन-टून ठीक से बैठाने लगा। इससे घर के अन्दर आने वाला पानी रुकता तो नहीं था पर उसके मन को कुछ शान्ति मिल जाती। उधर खेत में काम कर रही परमु

की पीठ ने भी गांव की ओर आती बरखा को भांप लिया। उसने सिर से दुपट्टा उतार कर खेत के डंगे से लगी खाली जगह पर बिछाया और मक्की के बीच-बीच उगी फ्रासबीन की फलियां बीन लीं। दो चार खीरे तोड़ लिए, दुपट्टे में डाले और गठरी बना ली। गुड़ाई किए बेकार पौधों और घास पतवार को एक हरी बेल से बांधकर बगल में दबाया। खिलना कंधे पर लटकाया और अपने घर की तरफ दौड़ लगाई। जब वह दौड़ते हुए नूपे के घर के पास से गुज़री तो ताना कस गई—

"आज डग्याली की रात आणी हे नूपे। सब स्लेट ठीक से बैठा ले। भेखली भी काट के ले आणी थी—बछा लेणी थी ऊपर। देख कहीं खुला रै गया तो झपाक से डाग पहुंचेगी अन्दर। देवां भी पूजा रखणा था।"

इतना कहकर बिदकी बछड़ी की तरह उछलती कूदती, हंसती परमु अपने घर दौड़ गई।

नूपा छत पर बैठा सोचने लगा कि पटवारी साहब, सेवक जी जब अबके गांव आएंगे तो उनको साफ-साफ बता दूंगा, "भैंस नी लैंणी मैंने—अपना घर ठीक कराणा है। पता नहीं क्यूं भैंस लेने को बोलते हैं। लछमी के लिए तो घास जुड़ता नहीं है। फिर परमु ने भी तो आना है इस घर में। टपकते घर में गीले बालण से अपनी बड़ी-बड़ी आंखें अंधी थोड़ी करणी हैं उसने।" दो चार बूंदें ही नूपे को आने वाले वक्त से इस वक्त पर ले आई। वह अभी उतर कर घर में घुसा ही था कि तावड़-तोड़ वर्षा आरम्भ हो गई। नूपे ने बाल्टी, लोटा, कड़ाही, टोकणा सब बर्तन टपकती धारों के नीचे लगा दिए। ज्यों-ज्यों यह बर्तन भरते जाते वह उन्हें खाली करने के लिए पानी दरवाजे के बाहर फेंक देता और बर्तन फिर वापस अपनी जगह रख देता। इसी प्रक्रिया को बार-बार करते सांझ हो गई लेकिन नूपे को ज्ञान ही नहीं रहा। वर्षा फिर रिमझिम हुई और बन्द। सारी दुनिया फिर से कुहैटी की सफेदी के घेरे में आ गई। दिन ढले की धुंध जब बढ़ते अंधियारे के साथ मिलकर वातावरण में तैरती है तो बड़ी भयावह होती है—कितनी ही भूलियां आकृतियां बनती बिगड़ती रहती हैं और आज तो डग्याली की रात है। जीव-मानस सब सूरज डूबते ही घरों में बन्द हो गये होंगे और बाहर विचर रही होंगी—डाग-डग्वांस—जो देखते ही हर जन्तु, सुन्दर महिला या पुरुष को खा जाएगी।

तभी ऊपर ठाकुर के घर से आवाज आई, "नूपे...। अरे नूपे!"

"जी महाराज!" नूपा जोर से चीखा

"ठाकुर लगे बलांवदे, शीगे आ।"

कोई बात होगी जरूर। तभी तो ठाकुर ने शीघ्र बुलाया है। नूपा बाहर निकलते थोड़ा-सा सिहरा—डग्याली की रात को वह ही अकेला होगा जिसके सिर पर छत न होगी। उसने किवाड़ भेड़ा, सांकल चढ़ाई और पंडतजी से सुने-सुनाए मंतर का जितना भाग याद था उसे रीत से अन-जान बांच दिया, "रख राम, रख देव, रख शीश, रख महेश, रख देवा जामू धांहियां, कोरगण देवी, सरब इच्छा करई।" और पथरीली पगडंडी से कूल्ह जैसी बह रही थी, जो बरखा के कारण ऊपर की ओर होड़ लगाए थी। धुंधलके में उसने देखा 12 हाथ लम्बी डाग अपनी अनेक भुजाएं फैलाए खड़ी है। फक से रह गया नूपा, "उई देवा"—उसके मुंह से निकला। नूपा स्थिर हो गया। झीनी चदरिया लपेटे वह डाग हवा में तैरने लगी। नूपे को लगा कि बस अब झपटी उस पर। कबूतर जैसे अपने ऊपर झपटती बिल्ली को देख आंख मूंद लेता है वैसे ही नूपा पथरीली पगडंडी पर उकड़ू बैठ गया—आंखों को अपनी हथेली में ढांपे। उसकी इतनी छोटी-सी दुनिया में से कोई भी उसे याद नहीं आया। बस, पसीने से धुली शिला बना बैठा रहा

वह इस अन्तिम क्षण। जब उसका चेत जागा तो उसने महसूसा उसकी सांस चल रही है और बाएं पांव के घुटने के पास उसका दिल जोर-जोर से धक-धक कर रहा है। आंखों से हथेलियां हटाई तो डाग फिसलगी कुहैट में खड़ा नाख का जाना पहचाना पेड़ बन गई। अपने पर हंसते हुए वह सोचने लगा, पेड़ और डाग; डाग और पेड़— सच मति का भरम है। सच दो नहीं होते सच तो एक ही है न, बस पेड़। डग्याली की रात न होती तो उसे पेड़ पेड़ ही सूझता।"

इसी सोच की लाठी उसे ठाकुर की देहली तक ले आई। ठाकुरों के घरों का धरातल कोलियों के लिए अनजान नहीं होता—केवल सीढ़ी चढ़ने की मनाही होती है उन्हें। यह मनाही आदेश के रूप में पिता से पुत्र को विरासत में मिलती चली आती है। ओबरे के साथ वाले कमरे में लैम्प का उजाला अंधेरे को भगाने की कोशिश कर रहा था। अंधेरा भी कमरे के कोने ढूंढ़-कर वहां सामने की जुगाड़ में था। उजाला कमरे की छोटी-सी खिड़की से बाहर निकलने को जोर मार रहा था और बाहर की धुंध उसे अपने में भींचकर दूधिया दैत्य बना-बनाकर बिखरा रही थी।

नूपे ने बन्द कमरे के द्वार को धकेला। दूधिया दैत्य पंच तत्व में बदल गए और नूपे से पहले इस कमरे में छुप गए। लैम्प की टिमटिमाहट भादों की रात की स्याही पर सफेदी पोतने का भरसक प्रयत्न कर रही थी। नूपे के कमरे में आज एक खाट और बिछ गई थी। तभी एक कोने पर पड़ी बड़े-बड़े फूलों के छापे वाले कपड़े की गठरी हिली—नूपा सहम गया—एक सर्द लहर उसके सिर से पैर तक दौड़ गई—गठरी तभी परमु बन गई—सुन्दर, भोली, अल्हड़, बड़ी-बड़ी आंखों वाली परमु—सर्द लहर गर्म होकर नूपे के पैर से सिर की ओर दौड़ पड़ी।

"सुन नूपे! पटवारी जी, सेवक जी आएं हैं। बापू को घर ठीक करने को पैसे दिए हैं। अहा जी! बैलों का जोड़ा भी मिलेगा। एक सिलाई की मशीन भी," परमु शहद उड़ेल रही थी।

"तेरा बापू कहां है।" नूपे ने टोक दिया।

"पटवारी जी कागज भूल आए पटवारखाने। लेने गया है। सवेरे तक आ जाएगा।" नीरस सवाल का सपाट उत्तर दिया परमु ने।

"सवेरे तक! डाग नीं चिमटेगी उसको?

"पंडतजी ने मन्तर बांच दिया है। सरसों की पोटली का धागा बांध दिया है उसके हाथ में," यह उत्तर देते हुए परमु ने हंसते हुए जोड़ा, "गिद्धड़ जैसा डरपोक है बापू, मन्तर बांचने पर भी भेखल की बूटी हाथ में ले गया है।"

नूपे और परमु के बीच तभी नूपे को बुलाती एक आवाज खड़ी हो गई। नूपा कमरे से बाहर निकला। ठाकुर जैसी आकृति ऊपर की मंजिल के कमरे के बाहर बरामदे में खड़ी थी। नूपा करबद्ध नीचे खड़ा होकर ऊपर की ओर ताकने लगा मानों किसान बादलों की गहराई की टोह ले रहा हो। तभी गरजती वाणी बरसी, "पटवारी जी, सेवक जी आए हैं नूपे। हमने साफ साफ बता दिया है उन्हें। नूपे ने भैंस नी लैणी है। नूपे को घर बनाने के लिए मदद मिलनी चाहिए। मान गए हैं वह लोग। तड़के ही आ जाना। अंगूठा लगवाना है तेरा। और भी कई काम करने हैं समझा। जा अब।"

"धन्न है माई बाप। आपका दिया खाया है सारी उमर। घर बन जाएगा मालक तो नसल सुधर जाएगी—जनम का कोढ़ दूर हो जाएगा," नूपे और उसकी बिरादरी को गिड़गिड़ा-

कर स्तुति करने की कला मां के दूध के साथ ही मिल जाती है और ठाकुरों को इसे सुनने की आदत घुट्टी में पिलाई जाती है। ऐसे शब्द उनकी भाव भंगिमा में कोई परिवर्तन नहीं लाते केवल जाम के घूंट-सा सुरूर देते हैं।

ठाकुर चुस्कियां लेते रहे—आह्लादित, पर मूक : प्रशस्त, पर अविचलित।

नूपा अपने इष्ट के चरणों में अभी गन बखान के और पवित्र पल्लव चढ़ाना चाहता था पर उसके 'जनम के कोढ़' के साथ जुड़ा था 'नसल का सुधार।' हाथ बांधे प्रार्थना कर ही दी, "परमु का बापू भी नहीं हैं यहां। उसको भी साथ ले जाऊं नीचे।"

"चातक की प्यास को शान्त करती अमृत बूंदें बरसीं, "पागल है क्या" जानता नहीं, आज डग्याली की रात है।"

[पंचवटी, भराड़ी-शिमला—171001]
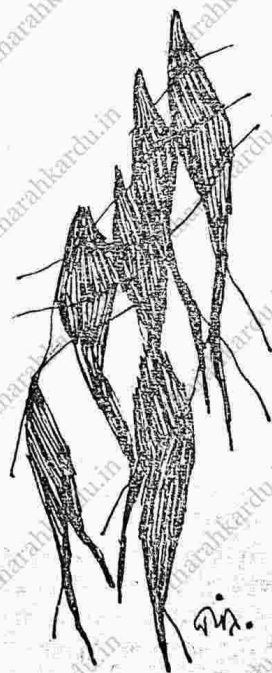
शेरनी की पूंछ

□ **श्रीवत्स**

उसने सचमुच शेरनी की पूंछ को हाथ लगाया था, सभी का यही विचार था। हैरानी सभी को हो रही थी कि चुहिया से भी डर कर बिदकने वाले इस पिद्दी सरीखे श्रीराम को कौन परशुराम का बल आ गया कि वह शेरनी से आंखें भिड़ा बैठा। श्रीराम, नत्थासिंह, जगदीश, कृष्णदेव, देवीदास, निक्का राम और लालसिंह विभाग के सभी पुंसक बाशिंदे आज एक साथ जगदीश के रिसर्च रूम में बैठे विचार-विमर्श कर रहे थे। यह बात सभी जानते थे कि वे सब कायर हैं, कि इतनी हिम्मत कभी उन में नहीं आ सकती थी कि वे शेरनी का रास्ता काट कर अपनी मिट्टी खराब करें। किंतु ऊपर से कोई भी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए श्रीराम को बीच में बिठाए बारी-बारी से अपनी पुंसकता की कलम लगा कर बिन बालों की छाती ठोंक रहे थे, "हम यह कर देंगे, वह कर देंगे।" "हम चू...नहीं हैं...जो उस की इतनी हिम्मत चुपचाप सह लेंगे।" नत्थासिंह बड़े जोशो-खरोश के साथ चीख रहा था। "इमॉशनल होने से अब कोई लाभ नहीं। जो हो गया सो हो गया, अब बात खत्म करो—यह तो मुझे पाता है...एक बाल तक उखेड़ने की हिम्मत तुम सब में से किसी की नहीं है, फिर क्यों बोल-बोल कर ख्वाहमखाह चू...बन रहे हो।" देवीदास ने लगभग निष्कर्षात्मक रूप से सच का ही बयान किया। किसी में भी इतना साहस नहीं था कि वे हैड के सामने या शेरनी के सामने आंख उठा कर बात तक कर पाते। ये सब एक ही विभाग के छात्र थे जो हैड की छात्रछाया तले अपनी नपुंसकता का विकास करते-करते सब सीमाएं लांघ गये थे। अचानक निक्काराम उछला "तुझे जरूरत क्या थी उसे छेड़ने की। साली पेशाब भी अब तो हैड की जेब में करती है...वो किसी का मज़ाक क्यों सहने की।"

दरअसल ये लोग कुमारी सिन्हा को लेकर बतिया रहे थे। कुमारी सिन्हा अभी तीन माह हुए, विभाग में नई-नई रिसर्चफैलो बन कर आई थी। आई क्या थी, इंटरव्यू में आए सभी बारातियों को धराशायी करती बैंड-बाजे के साथ लाई गई थी। इंटरव्यू में उससे पूछा गया था —"तुम्हारी उम्र कितनी है? शादीशुदा हो या अविवाहित? पी० एच० डी० करने में कोई परेशानी तो नहीं।" गर्म-गर्म चाय के प्यालों के बीच उसका लड़की होना सभी को भा गया था और वह निर्विवाद रूप से चुन ली गई थी। वैसे ऐकेडमिक क्वालिफिकेशन की भी उसके पास

श्रीवत्स का असली नाम राकेशवत्स है। लेकिन चर्चित कथाकार राकेशवत्स के साथ नाम साम्य की वजह से होने वाली भ्रांति से बचने के लिए इन्होंने अब श्रीवत्स नाम से लिखना तय किया है। —सं०

कमी नहीं थी। दो फर्स्टक्लास, टी. वी. में काम करने का एक वर्ष का अनुभव, सुन्दर चेहरा, गठा हुआ शरीर, बात करते हुए आंखों को ज़रा-सा तिरछा करके खिलखिलाना और बकौल हैड—"हर किसी के साथ बोल्डली बात करना—आजकल की लड़कियों में कहां होता है।" यह और बात है कि उसका लड़की होना ही उसकी स्युटेब्लिटी का राज़ था।

धीरे-धीरे मिस सिन्हा विभाग का केन्द्र बिन्दु बन कर सभी को अपनी उंगली पर नचाने में माहिर हो गई। विभाग के लेक्चरार भी नीरस विषयों से विमुख होकर जीवंत साहित्य यानि कि सिन्हा की फिगरज़, कपड़ों, उस की बॉडी के साईज़ के अध्ययन में रत हो चुके थे। हैड स्वयं उसे लाइब्रेरी से बुला कर घर ले जाता। घर जा कर वह अपने हाथों से चाय बनाती, पकौड़ियां तलती और हैड उसके पाकज्ञान की तारीफों के पुल बांधता रहता।

श्रीराम इस विभाग का ऐक्स स्टूडैन्ट था जो एक वर्ष पहले एम. फिल. करके किसी प्राइवेट कॉलिज में टेम्परेरी जॉब पर लगा था। जहां मिलते चार सौ रुपये थे और साइन चौदह सौ पर करना पड़ता था। छह माह बाद ही उसने इस शोषण से तंग आ कर नौकरी छोड़ दी थी। नयी नौकरी के चक्कर में सूंध लेता हुआ वह कल यूनिवर्सिटी पहुंचा था। उसे अच्छी तरह मालूम था कि उसकी नैय्या हैड के धक्के बिना पार नहीं हो सकती थी। जिस किसी कॉलिज में भी वह इंटरव्यू देगा वहां एक्सपर्ट या तो हैड होगा या हैड का कोई कुत्ता। इसीलिए आते समय हैड के लिए वह दो किलो बर्फी का एक बड़ा डिब्बा और एक दर्जन संतरे खरीद कर हैड के घर उनकी अनुपस्थिति में दे आया था। गोया कि हैड अपने सामने ऐसी चापलूसी सहन नहीं करते थे कि साफ बच निकलने के लिए वे झट भाषण बघारना शुरू कर देते,···"देखो श्रीराम, तुम हमारे शिष्य हो···और शिष्यों से मैं ऐसी चीजें लेना अधर्म समझता हूं। जब नौकरी पर लग जाओ तो जो जी में आए करना···किन्तु अभी नहीं।" और फिर मिठाई का डिब्बा एक ओर रखवा कर मानों एहसान लादते हुए कहते,—"खैर-अब हम तुम्हारा मन नहीं तोड़ना चाहते जब ले ही आए हो तो चलो, उधर रख दो।" फिर हंसते हुए उपसंहार के रूप में उन के मुख से यह वाक्य निकलता—"लेकिन इसे मैं हाथ नहीं लगाऊंगा।" यह और बात है कि शिष्य के खिसकते ही सब चीजों का जायज़ा पहले वह स्वयं लेते कि मिठाई कहीं घटिया तो नहीं, किस दुकान से खरीदी गई है। इन सब बातों का पता उसे पाल से चल जाता था जो हैड का मुंह लगा चमचा था। साफ शब्दों में तो नहीं किन्तु कुछ इस तरह से वे पाल से कहते कि सैंट्रल आइडिया समझा जा सकता था। यदि मिठाई घटिया या सस्ती हुई तो बात मिलावट से शुरू होती,—"देखो पाल-आज हर चीज़ में मिलावट हो रही है। मिठाई ही देखो। वह श्रीराम कल एक डिब्बा बर्फी का दे गया था। मैंने चख कर देखी तो मुंह में जैसे मिट्टी घुल गई। ये हलवाई के बच्चे भी बस-बीमार करने पर तुले हैं। मैंने सारी बर्फी तभी बाहर फिंकवा दी।" इसका मतलब होता था कि पाल श्रीराम तक यह सूचना भिजवा दे कि उसे बढ़िया मिठाई देनी चाहिए थी। और यदि मिठाई बढ़िया हुई तो बात कुछ इस तरह से शुरू होती,—"पाल··· आदमी चाहे तो दो टुकड़े बर्फी खाकर ऊपर से एक गिलास पानी पी ले—बस उसके बाद खाने की कोई जरूरत नहीं। वो श्रीराम कल एक डिब्बा बर्फी का दे गया था। जालिम बहुत बढ़िया चीज़ थी। पता नहीं कौन दुकान से लाया था। हमें तो साला मिलता ही घटिया माल है।" इसका मतलब होता था कि हैड प्रसन्न हुए और मिठाई का स्तर इससे नीचे नहीं गिरना चाहिए। बहरहाल—मिठाई देकर वह सीधा विभाग पहुंचा था ताकि इधर-उधर के हालचाल मालूम कर

सके। पहुंचते ही उसे खबर मिल गई थी कि विभाग में एक नई चिड़िया सबके पंख कुतर रही है। उत्सुकतावश वह उसे देखने सीधा रिसर्च रूम में ही पहुंचा। लेकिन वहां उसे वह चिड़िया तो नहीं दिखाई दी-हां दूसरा रिसर्च स्कॉलर यानि कि जगदीश, जो उसका क्लासफैलो और मित्र था वहां कुर्सी पर जमा हुआ नाक की मैल की शोध में व्यस्त दिखाई दिया। दोनों एक दूसरे को देखते ही प्रसन्न चित्त से गले मिले, सुख-दुख की बातें हुई और जगदीश से ही श्रीराम को पता चला कि मीना जो सिन्हा से पूर्व रिसर्च स्कॉलर बन कर विभाग में आई थी, कन्या महाविद्यालय में स्थायी नौकरी पा गई है। उसे याद आया कि मीना जो देखने में तो बहुत सुन्दर थी किन्तु नामवरसिंह को नवम्बरसिंह ही बोलती थी और हैड इसे उसकी मासूमियत कह कर खिलखिला उठते थे। हैड का चेहरा ध्यान में आते ही उसके चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गई। जगदीश ने आगे बताया कि मीना से पूर्व की वीणा भी स्थायी नौकरी पर लग गई है। उसके चेहरे पर थोड़ी देर पहले बिखरी मुस्कुराहट एक अजीब तरह की विद्रूपता में बदल गई। वह जानता था कि हैड अब सबके सामने प्रवचन उगलता होगा कि "कौन कहता है कि हमारे विभाग के विद्यार्थियों को नौकरी नहीं मिलती। हमारी तीन योग्य और अनुभवी छात्राएं फलां-फलां जगह पढ़ा रही हैं। कि सभी को खूब मेहनत करनी चाहिए कि हमसे जो बन पड़ता है हम करते ही हैं।" खैर—उसने इस विचार को दिमाग से झटका। इस वक्त वह सिन्हा के बारे में जानने को उत्सुक था। अभी वह जगदीश से मिस सिन्हा के बारे में पूछ ही रहा था कि वह धड़धड़ाती हुई शाने-पंजाब की तरह कमरे में घुसी और कमरे का सारा वातावरण जैसे तूफान हो गया। कमरे में घुसते ही कोई खाली कुर्सी न देख उसका चेहरा भभकते स्टोप की मानिंद सुर्ख लाल हो गया। जगदीश ने जल्दी से अपनी कुर्सी खाली की और पानी पीने के बहाने गिलास उठा कर बाहर निकल गया। लम्बी सांस छोड़ते हुए सिन्हा ने श्रीराम का कोई नोटिस लिए बिना अपने ब्लाऊज के सामने के दो बटनों को खोला और श्रीराम के सामने जगदीश की कुर्सी पर पंखे के नीचे आंखें बन्द करके बैठ गई। श्रीराम देख रहा था इसका शरीर मीना से भी अधिक उठा हुआ है। सचमुच इसकी नियुक्ति विभाग में आवश्यक थी। विभाग का मुखड़ा···और काग़ज़ की गोली जो श्रीराम की उंगलियों में फंसी गोलाई धारण कर रही थी, छिटक कर मिस सिन्हा के ब्लाऊज में, मानो नील नदी की घाटी में या हिमालय के दो पहाड़ों के बीच जा लगी। जैसे पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया हो या बराबर ही कहीं बम फटा हो। वह शेरनी की तरह बिफर कर उठी और श्रीराम के गालों पर चप्पलियों के निशान बनाती सीधे हैड के कमरे में घुस गई। शिकायत···श्रीराम का पेशाब रुक गया। उस बेचारे को बिल्कुल पता नहीं चला कि गोली कब, कैसे फिसल कर वहां जा लगी। जगदीश ने बाद में यही कहा था,—"साले किस ने कहा था शेरनी की पूंछ को हाथ लगाने को।" और उसी शाम सब जने इकट्ठे हो कर विचार-विमर्श कर रहे थे कि अब क्या किया जाए। श्रीराम सोच रहा था, बल्कि सब के सांत्वना देने के बावजूद घबरा रहा था कि हैड अब उसकी नैय्या डुबोकर ही दम लेगा। पहले कौन हैड से उसकी अच्छी बनती थी। उसने तो हमेशा हैड का सामना ही किया था। एम. ए. करते हुए उसने कई बार हैड के अक्सर क्लास न लेने के कारण उसके विरुद्ध लड़कों को उकसाया था। उसे याद आया वह समय जब वह इसी कारण विभाग के एक-एक टीचर की टांग खींचा करता था। विभाग में आने पर ही उसे मालूम हुआ था कि बड़ी-बड़ी डिग्रियों के लबादे ओढ़े ये टीचर अध्यापन के नाम पर गोल लट्टू हैं। शुरू में वह कभी नहीं समझ पाया कि इन लोगों की

नियुक्ति किसने और किस आधार पर की होगी। किन्तु बाद में धीरे-धीरे उसे सब समझ आने लगा जब उसने हर एक टीचर को कभी रेलवे स्टेशन पर हैड का आरक्षण कराते, बाज़ार से सामान खरीद कर हैड के घर पहुंचाते और हमेशा हैड की हां में हां मिलाते हुए देखा। यह सब देख कर उच्च अध्ययन की उसकी बचपन से संजोई हुई कल्पना अचानक ही भरभरा कर ढह गई। समझौता करना उसे कभी गवारा नहीं हुआ। किन्तु इन सब का नतीजा यह निकला कि हैड उसके एम. फिल. प्रवेश के विरुद्ध हो गया। उसे खबर मिली कि उसके विरुद्ध छोटे-मोटे अपराधों एवं अनुशासनहीनता की एक लम्बी फेहरिस्त तैयार की जा रही है। पाल ने उसे सिर्फ इतना बताया था कि डॉ. साहब तुम से बेहद नाराज़ हैं। बेहद नाराज़गी का मतलब, वह बखूबी समझता था। हैड के नाराज़ होते ही बाकी प्राध्यापक भी वही भाषा बोलने लगते थे गोया कि लोकतन्त्र चरितार्थ कर रहे हों। वैसे वह चाहता तो एम. फिल. किसी दूसरी यूनिवर्सिटी से भी कर सकता था। किन्तु वह जानता था कि यह उसका भ्रम है। हैड के हाथों की लम्बाई से वह बखूबी परिचित हो चुका था। लगभग सभी यूनिवर्सिटीज़ के सम्बन्धित विभागों के अध्यक्षों से उसके मधुर सम्बन्ध थे। उसने कई बार सोचा कि भाड़ में जाए एम. फिल.—कुछ और कर लेंगे। किन्तु हर बार उस की ऐसी सोच बूढ़े मां-बाप के चेहरों से टकराकर भरभरा जाती—जो हमेशा उस की आंखों के आगे तैरने लगते। बूढ़े मां-बाप तथा अपनी जिम्मेदारियों का ख्याल कर उसने समझौता करने का फैसला किया था। हैड के सामने झुकने में ही उसका भला है। यह सोच लिए एक दिन जब वह चापलूसी के प्रवचन रटता हुआ हैड से अपनी पिछली कारगुजारियों की मुआफी मांगने उन के कमरे में अचानक ही दाखिल हुआ तो सामने का दृश्य देख कर उसके पांव के नीचे की जमीन खिसकने लगी। हैड अपनी कुर्सी पर न होकर बराबर वाली आराम कुर्सी केलि पर बैठे एक बालिका को साप्रयोगिक ढंग से रीतिकालीन केलि वर्णन, चुम्बन, परिरम्भण समझा रहे थे। यह दृश्य देखते हुए उनका एक पांव कमरे के अन्दर और दूसरा बाहर था। मुंह खुला का खुला रह गया था। यह होश आते ही कि उसने सचमुच कुछ असामान्य देख लिया है, झट से दरवाज़ा बन्द कर वह उल्टे पांव भागा। विभाग में आजकल परीक्षोपरांत की छुट्टियां चल रहीं थीं। इसी का फायदा उठा कर वे एक्सट्रा क्लास ले रहे थे। उन्होंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि बिना दरवाज़ा खटखटाए भी कोई इस तरह उनके कमरे में आ सकता है। कुछ भी हो—वह चला था भूल सुधार करने और इतनी बड़ी भूल कर बैठा कि नतीजतन उसे एम. फिल. में अपना प्रवेश अब संदिग्ध नहीं असंभव ही दिखाई देने लगा। वह सारी रात बिस्तर में लेटे हुए यही सोचता रहा कि अब एक दिन भी यहां रुकने का कोई लाभ नहीं कि कल ही हॉस्टल छोड़कर उसे वापिस चले जाना चाहिए और कोई काम ढूंढ़ने काम प्रयास करना चाहिए।

अगली सुबह जब वह सचमुच अपना सामान बांधने में व्यस्त था—अपने कमरे में हैड की सूरत देख एकदम सिटपिटा गया किंतु हैड का उतरा हुआ चेहरा देखकर उसके दिमाग में कुछ खटका। सामान बंधता देख कर हैड को शायद उसके जाने का शुबह हो गया। उनके चेहरे पर वापिस लौटती मक्कारी से वह शीघ्र ही यह बात ताड़ गया। इसलिए हैड के यह पूछने पर कि, 'जा रहे हो' उसने हंसकर जवाब दिया, 'नहीं-कमरे में सफेदी होनी है इसलिए सामान बांधकर बाहिर निकाल रहा हूं। उसने देखा यह सुनते ही हैड के चेहरे से मक्कारी गायब हो गई और चापलूसी उतर आई है। फिर काफी देर बैठ कर वे उसे समझाते रहे कि देखो श्रीराम, तुम एक समझदार और होनहार लड़के हो कि तुम में बहुत प्रतिभा है कि विभाग

को तुम जैसे उत्तरदायी लड़कों की ही आवश्यकता है कि यदि हमने तुम्हें प्रवेश नहीं दिया तो किसे देंगे, कि तुम्हें कुछ लोगों ने मेरे खिलाफ भड़काया है। और फिर एक लेक्चर उन्होंने श्लीलता-अश्लीलता पर देते हुए कहा, 'देखो श्रीराम— संसार में कुछ भी अश्लील नहीं होता, लिटलेचर में तो बिलकुल ही नहीं होता। जैसे मेरे हाथ नंगे हैं, तुम्हारे भी नंगे हैं—फिर बाकी शरीर के अंग हम क्यों नहीं देख सकते, छू सकते कि बाथरूम में तो हम सब नंगे ही होते हैं, कि अजंता-एलोरा के चित्र एवं खजुराहो की सभी प्रतिमाएं मिथुनमुद्रा में हैं—क्या वे अश्लील हैं? नहीं हैं। किंतु आज हमने तरह-तरह के बनावटी खोल ओढ़ कर अपनी दृष्टि को विकृत एवं संकुचित कर लिया है। इसलिए हमें श्लील-अश्लील की बातें सूझती हैं। नजर साफ हो तो कुछ भी अश्लील नहीं होता।" इतनी लंबी-चौड़ी भूमिका बांधने के बाद उन्होंने अपनी शंका या डर इस तरह प्रकट किया कि एकबारगी तो श्रीराम यह सोचकर घबरा गया कि पिछले दिन के सीन के बारे में उसने कितना गलत-सलत सोचा था। हैड साहब ने कहा, "देखो श्रीराम, मैं आजकल शरीर-विज्ञान पर एक पुस्तक लिख रहा हूं। यानि कि शरीर के कौन-कौन से अंग कब और कितने अधिक संवेदनशील हो उठते हैं। मतलब यह है कि शरीर के विभिन्न भागों को हाथ से छूने पर उनमें क्या क्रिया-प्रतिक्रिया होती है कि स्तनों को हाथ लगा देने से खून चेहरे पर क्यों जमा हो जाता है—आदि-आदि।" इसके आगे हैड को कुछ भी कहने की जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि सोच समझ कर और लोहा गर्म देखकर श्रीराम ने हैड के पांव पकड़ लिए थे और अपने सभी कुकृत्यों की मुआॅफी मांग ली थी—कि उसने पिछले दो वर्षों में बहुत पाप किए कि वह सदा लोगों के बहकावे में आता रहा कि उसने देवता तुल्य हैड के बारे में सदा बुरे एवं गलत विचार रखे कि उसने हैड को पहले कभी नहीं समझा कि अब आगे से वह सदा उनका आज्ञाकारी शिष्य बन कर रहेगा।

इस तरह एम० फिल० में तो श्रीराम को प्रवेश मिल गया किंतु उसके सारे आदर्श, मान्यताएं, सारे स्वप्न, बड़े आश्चर्यजनक ढंग से, बिना कोई हंगामा किए धराशायी हो गये। एम० फिल० करते-करते वह इतना नपुंसक हो गया कि उसे अपनी नौकरी के अलावा-कुछ भी सूझना बंद हो गया। नौकरी और कैरियर की सोचते ही हैड का चेहरा सामने आ जाता और वह हर संभव प्रयत्न करता कि हैड को किस प्रकार खुश रखा जाए कि हैड की खुशी-नाराज़गी पर ही उसका सारा ध्यान केंद्रित रहने लगा। और नौबत यहां तक आ गई कि वह कई बार अपने भविष्य को लेकर हैड के सामने गिड़गिड़ाया। 'उसे केलि वर्णन, चुंबन और परिरम्भण वाला दृश्य भूल चुका था।

श्रीराम की तंद्रा लौटी तो उसने देखा सभी आश्चर्य से उसे देख रहे हैं। संभवतः उनके बहसते-बहसते वह झपकी लेने लगा था। "अब सीधे जाकर हैड से और मिस सिन्हा से मुआॅफी मांग लो।" नत्थासिंह जैसे बहस का निर्णय सुना रहा था। "हां-अब इसके अलावा और कोई चारा नहीं" जगदीश ने वकीलाना अंदाज में हाथ हिलाते हुए कहा। श्रीराम सोच रहा था। "हां-मुआॅफी ही एकमात्र रास्ता है। मुआॅफी यानि कि कुत्तागीरी।" और श्रीराम मुआॅफी मांगने के लिए प्रवचन तैयार करने में जुट गया।

[हिन्दी विभाग, इंदिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली]

मां-बेटियां

□ मोहन सिंह बाबा

पिछले आठ-दस दिनों से रजनी को ऐसा अनुभव हो रहा था जैसे किसी पहाड़ के शिला-खण्डों से घिरे हुए चश्मों ने रास्ता ढूंढ लिया हो, हज़ारों सालों से जमी हुई बर्फ़ जैसे सूरज की तपिश से पिघल कर पानी बन कर बह निकली हो। उसे यह दुनिया छोटी-छोटी लगने लगी। अंतर्मन सुगंधों से भर उठा।

रात होती तो सबेरे की प्रतीक्षा करने लगती। सबेरे बस स्टैंड पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता। कालेज के बाद भी वह एक-दो घंटे बाद घर आती। कभी कोई बहाना बना देती, —कभी कोई। मां उसकी ओर एक बार तीखी निगाह से देखती और चुप रह जाती।

इस बार होली भी उसे बेहद रंगीन लगी। उसे लगा,जैसे यह त्योहार उसी के लिये मनाया गया हो। वह पूरे दिन आसपास की लड़कियों के साथ होली खेलती रही, नाचती-गाती रही और उसके आने की प्रतीक्षा करती रही। फिर लड़कियों और लड़कों की टोली आई, नाचती गाती, गुलाल उड़ाती। उनमें वह भी था, जिसका उसे इंतज़ार था।

उस समय वह अपने मकान से कुछ दूर एक सहेली के घर के सामने खड़ी थी। उसके हाथ में गुलाल का लिफाफा था। वह आगे बढ़ा और रजनी के संभलने से पहले ही उसने रजनी का मुंह गुलाल से रंग दिया। वह शरमा कर पीछे भागने लगी तो उसने बांह पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। दो चूड़ियां तड़ाक कर के टूट गई और उसकी कलाई पर लहू की पतली लाल जैसी लकीर बन गई। उसके होंठ कुछ कहने के लिए हिले। अचानक रजनी की निगाह ऊपर बालकनी पर गई। मां खड़ी उसकी ओर देख रही थी। उसने घबराकर बांह छुड़ा ली और सहेली के घर के अंदर चली गई।

कुछ देर बाद जब वह अपने घर की रसोई में काम कर रही थी तो वह सहमी हुई थी। उसकी भवनाओं का जैसे अंत हो गया, और उछालें मारते इरादों की जगह, एक डर भर गया था, एक उत्सुकता पनप गई थी।

"मैंने पहला ही पैर उठाया और पकड़ी गई। कालेज में लड़कियां क्या कुछ नहीं करतीं, किसी को पता भी नहीं लगता।"

वह रसोई में खड़ी पतीले में करछुल हिलाती हुई उस पल की प्रतीक्षा कर रही थी, जब मां उससे आ कर पूछेगी और वह आंखें नीची किये चुपचाप खड़ी रहेगी। मां को जब गुस्सा आता है तब वह क्या कुछ नहीं कह बैठती? पिता जी से ज्यादा उसे मां से डर लगता था। पिताजी कई बार घर में हंसते-खेलते और वातावरण को हल्का बनाने का यत्न करते, मां हमेशा

गम्भीर ही रहती।

"पर मुझे क्या जरूरत है मां से इतना डरने की ! मैंने कौन-सा इतना बड़ा गुनाह किया है, जो किसी और लड़की ने नहीं किया, या मां ने भी नहीं किया होगा ?"

उसे याद आया—मां की संदूक में कपड़ों के नीचे एक छोटा सा डिब्बा है। कई वर्षों से मां ने उसे नहीं छुआ है। पर जब वह छोटी थी, उसे याद है, कि मां उस डिब्बे को बाहर निकालती थी; खासकर जब पिता जी दफ्तर गये होते थे। उनमें पड़े कागजों को घंटों तक देखती रहती थी। डिब्बे में कुछ खत थे, कुछ फोटो और कुछ ग्रीटिंग कार्ड। और उसके बाद वह कई-कई दिन उदास और खोई-खोई रहती थी।

और उसको लगा जैसे हर कोई अपने मन के कोने में शायद इस तरह के डिब्बे छिपाए हुए है—यादों के डिब्बे, तस्वीरों के डिब्बे और उच्छवासों के डिब्बे जिन्हें वह एकांत में बैठकर खोलता फलोरता रहता है और किसी के आ जाने पर डिब्बा स्वयं बंद हो जाता है। शायद किसी दिन मैं भी···।"

आज क्यों उसके मन में ऐसे भाव उठ रहे थे जो पहले कभी नहीं उठे थे। यह किस तरह का अनुभव था जिसने उसके मन को इतना कोमल बना दिया था ?

"मां हमेशा कितनी उदास रहती है ? वह सोच रही थी, "कितनी अकेली-अकेली ! होली तो कभी भी उसने उत्साह से नहीं मनाई।"

रजनी ने पतीला अंगीठी से उठा कर नीचे रख दिया। गुसलखाने से आ रही आवाज से उसने अनुमान लगाया कि मां अब नहा चुकी है और नहाने के बाद कमरे में चली गई है—अब शायद नयी साड़ी बांध रही होगी—और फिर उसे ट्रंक खुलने की आवाज आई, वही सदूंक जिसमें कपड़ों के नीचे एक किनारे एक डिब्बा पड़ा हुआ था। रजनी दबे पैरों कमरे की ओर गई। मां खिड़की के पास बैठी बाल सुखा रही थी और गुनगुना रही थी। उसके लम्बे-लम्बे रेशम जैसे बाल अभी भी कितने चमकीले और काले थे। गीत के बोल जाने पहचाने थे। मां कई बार अकेली बैठी यह गीत गुनगुनाने लग जाती थी। मां की आवाज भी कितनी प्यारी थी। पर कोई भी गीत मां ने कभी पूरा नहीं गाया। वह इस प्रकार खिड़की के पास बैठी कितनी अकेली-अकेली लग रही थी। मां को इस प्रकार देख कर रजनी का मन उसके लिए भर आया और उसका जी किया कि वह मां के गले में बांह डाल कर बातें करे। पर मां और उसके बीच कितना लम्बा फासला था; कितनी दूरी थी।

जब भी वह मां के सामने आती तो रजनी को लगता कि तीखी नजरें उसके अंदर चुभती जा रही हैं। फिर उसने जवाब देने के लिए काफी कुछ सोच रखा था। कह दूंगी, कुछ नहीं हुआ, यूं ही तुम्हें वहम हो गया है···। यदि बात आगे बढ़ी तो कह दूंगी, तो क्या हुआ ? होली ही तो खेली है ! इसमें इतनी क्या आफत आ गई ? तुम्हारा जमाना और था और हमारा और है। तुम्हारे और मेरे बीच में एक फासला है, वर्षों का फासला, उमरों का फासला !

वह दिन यूं ही बीत गया डरते-डरते, दलीलें करते-करते। मां ने कोई बात नहीं की।

सुबह जब वह विद्यालय जाने लगी तो मां ने आवाज दे कर रोक लिया। रजनी का दिल एकदम धक् कर के रह गया। वह डरती-डरती मां के पास जा कर खड़ी हो गई। मां ने एक बार नीचे तक देखा और फिर उसका हाथ पकड़ कर कलाई की ओर देखते हुए कहा, "यह चूडियां कैसे टूट गईं ?"

"अपने आप, होली खेलते हुए टूट गई।" रजनी डरते-डरते बोली।

एक क्षण दोनों चुपचाप एक दूसरे के सामने खड़ी रहीं। फिर मां ने अपने गले से सोने की जंजीर उतार कर रजनी के गले में डाल दी।

"यह क्या; मां ?"

"यह मैंने तेरे लिये बनवायी थी। अब तू बड़ी हो गई है और समझदार भी। यह अब तेरे ही गले में अच्छी लगती है।"

पता नहीं यह करुणा थी, कि उदासीनता थी, उसकी आवाज में, कि रजनी की आंखें भर आईं! कुछ बोलने के लिए होंठ हिले पर शब्द उसके हल ही आ कर रुक गये और वह "थैंक्यू कह कर सीढ़ियां उतर गई और उसे लगा कि मां और उसके बीच की उम्र की दूरी लोप हो गई है, जैसे मां उसकी हमजोली हो, क्वारी हो, स्वयं उसकी तरह।

अनुवाद : घनश्याम रंजन
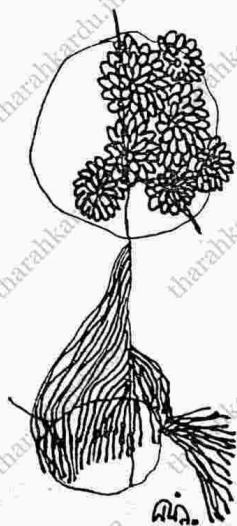
कविता

पांच कविताएं

□ अवधेश कुमार

जिसमें कविता नहीं होगी

प्रकाश के सुते हुए इकहरे जिस्म के भीतर
मैं सुलग रहा हूं एक ठंडी आग की तरह
ज़िन्दगी के इस तंग आले की मुंडेर पर धरी
मिट्टी की एक, गोल सुघड़ और एक थोड़ी-सी
गहरी काया के कंगूरे पर
बंटी हुई रुई-सी सांस की एक पूनी के
जलते हुए सिरे से उभरती हुई
धुएं की एक हल्की-सी कांपती लकीर से
दंग करता हुआ दीवारों की सफेदी को

रात अभी शुरू ही होती है और मैं बुझने-बुझने को

सुलझना शुरू होता है दिन भर का क्रम
कि फिर से भ्रम की नींद, घुटती हुई चीख का गला
दबाते हुए एक जाग की महीन फड़फड़ाती हुई
झिल्ली को अंधेरे की दलदल में दफना देती है
कि लो टूटे हुए घुटनों के बल पर सूखी नदी के
किनारे बैठे-बैठे, प्यास की नज़र आसमान में
बादल के किसी खिले हुए पंख को ढूंढ़ती
एक कटी हुई पतंग की तरह
मोर के बदसूरत पैरों पर आ टिकती है

अपने धुएं की कालिख पोतता हुआ अंधेरे के मुंह पर
दंग करते हुए सूखी नदी को अपनी प्यास से
मैं जब बादल बनकर लौटूंगा इस बंजर आसमान में
तब सब के सब अपने-अपने हाथों में

बुझे हुए तारे लिए इस सूखी पथरीली नदी के
पत्थरों की तरह अविचल अपनी वेदना का प्रवाह थामे
मिलेंगे भंग करते हुए मोर के नृत्य को
और उसके पैरों को पत्थरों से मार-मार कर कुचल डालते हुए
दीवारों की सफ़ेदी को खुरचते हुए नाखूनों से
चीख को उखाड़ते हुए आवाज़ की जड़ से
प्यास को खींचते हुए पानी के तनाव से
जो मोरपंख झरेगा पतझर के पत्ते की तरह
उसी से शुरू होगा नया अध्याय
जिसमें कविता नहीं होगी मैं होऊंगा
भाषा नहीं होगी हम सब होंगे।

आदमी

इतना सामूहिक प्यासा था वह
कि उसने पत्थर निचोड़े और
उन्हें पी गया
इतना एकाकी था
कि भीड़ की तस्वीर फाड़ी
और उसमें घुस कर
किसी गुमनाम जगह में खो गया।

खण्डहर भी उसके थे
और कम्प्यूटर भी उसके
सब कुछ उसी का था
जो किसी के अतीत से होते हुए
उसके वर्तमान तक आया था

वह घबराया
और उसने तिनके का सहारा
भी छोड़ दिया
क्योंकि एक
एकमात्र मछली
अपना सफेद सीना दिखाती हुई
उसके भविष्य की तरफ से आई थी।

कोई नहीं चाहता था कि
प्रतीकों की भाषा में बात की जाए
मगर हर कोई किसी-न-किसी बात का
प्रतीक बनना चाहता था।

फिर सबने एक मत होकर कहा
कि जब तक यह सूरज चमकता है
हम एक-दूसरे से छुप नहीं सकते
और जब-जब सूरज निकला
तो वे किसी दूसरे-तीसरे को
अपने आगे धकेल कर उसके पीछे छुपने में कामयाब रहे

दिन भर एक क्रांतिकारी
सूरज सूरज चिल्लाता रहा
और रात होने पर
एक मामूली सी कब्र से डरकर
शहर में कहीं जा छुपा।

रात ढलने पर एक उदास आदमी
उस कब्र से उठा चिल्लाता हुआ
आखिरकार आखिरकार
हो गया सवेरा चमक उठा सूरज
मुझे बताओ
क्या मैं सचमुच
तुम्हारी दुनिया में वापस लौट सकता हूं ?

फलसफा

ये कातर ध्वनियां कहां से आईं ?
उत्सव में तो थे विस्फोट और करतल ध्वनियां !

तब तुम्हारे कान क्यों चौकन्ने हो उठे ?
उन्हें क्या कुछ और सुनाई दिया !

ध्वनियां धन्य हैं करतल की
तुम क्यों खिन्न हो ?

बाहर का सन्नाटा तुम्हारे भीतर
क्यों उमड़ आया : तुम खुद को धकेल कर
अपने से बाहर क्यों नहीं निकल आए
ये अटूट नींद—
तुम्हारे सोने और जागने के बीच का
कौन सा फलसफा है ?

सृष्टि

एक वादक
अपने वादन के
शब्दों का भी
नि:शब्द आनन्द उठाता है
हम उसे निर्वाक्
निस्तब्ध
सिर्फ देखते चले जाते हैं।

कल की कथा

आसमान से आंखें चुराकर
हर कोई एकत्र हो रहा है
किसी गुम्बद के नीचे

पंकिल ज़मीन त्यागकर
पवित्र फ़र्शों पर कर रहा है
भयभीत चहलकदमी

एक कोई भी अच्छा-सा शब्द छोड़कर
रख लिया उसने अपने शव पर
ब्रह्मांड से भी भारी
और अपरिभाषित कोई धर्मग्रंथ
स्वयं को देते हुए एक पूर्व निश्चित श्रद्धांजलि

सड़क पर निकला हुआ आदमी
अपने को किसी-न-किसी
गुम्बद की परछाई से बचाने की कोशिश में

किसी-न-किसी सूरज के पीछे
डर कर हो जाता है गुम

कल सूरज निकलेगा या नहीं
ये बीते हुए कल की व्यथा थी
मगर आज सूरज ज़रूर निकला था।
क्या ये आने वाले कल की कथा होगी।

[90, कृष्णागली देहरादून, उ०प्र०]

तीन कविताएं

□ रेखा

जनरल वार्ड में एक रात

इधर शहर जिंदगी का
उधर मौत का
दोनों की हद पर पड़ता है
दर्द के बंजारों का डेरा

खिड़कियों में खुली हैं
खाली घोंसलों-सी आंख
आकाश में ताकती
उम्मीद की चिड़ियों के
सहमे हुए झुण्ड

फड़फड़ाकर उड़ जाते हैं
दिन-रात लम्बे बरामदे में
बिस्तरों की कतारों के
अन्दर और बाहर घूमते
अहेरी की आहटों से

बिस्तर एक पिंजरा
पिंजरे में बन्द
एक पिंजर शरीर
छटपटाती हैं
पखेरू सांसें
घायल कातर
कितने व्यर्थ हैं
सब सवाल

वह कौन है
कहां से आया
हर चेहरे पर पहचान-पत्र जैसा
छपा है एक ही लिपि में
एक ही हस्ताक्षर
बांट रहा सबको
हताश भागीदारी

कौन साबुत है
किसका है नाम बाकी
नम्बर एक रेंग रहा रीढ़ में
फेफड़े में हांफ रहा है नम्बर दो
दस नम्बर पिस रहा है पसली में

गहरी रात गए
लंगर से खुलता है जब
यह पीड़ा पोत
दूर-दूर से आती हैं
छप-छप कराहें
चप्पू चलाती अंधेरे में
सन्नाटा बिखरता है
फिर जुड़ता है
उमड़ता है लहर-लहर

शहर के उस छोर
सुनाई पड़ती है
मल्लाहों के गीतों की गूंज
इधर आबनूसी मछुआरे के
जाल में छटपटाते हैं
मछली के प्राण

सुबह
खिड़की के शीशों पर
आ जमती है
मैली सी भिखारिन धूप
हर बिस्तर का कैदी
कंगाल चेहरा

कितनी दिलेरी से फेंकता है
खोखली मुस्कान का
बेआवाज़ सिक्का

सिरहाने रखे आइने में
देखती है
चौथे नम्बर की औरत
अपना हल्दी चेहरा
माथे पर
पसीजी उंगलियों से
टांक देती है
दहकती सुर्ख बिंदी

क्षण भर के लिए
दरवाज़े की ओट हो जाती है
महीनों से घूरती हुई मौत

ग्यारह नम्बर की युवती
छुपा लेती है
लाल कम्बल में
अपना झुलसा हुआ चेहरा
उसे सुनना है
एक बार फिर
उस जवान खूबसूरत
डॉक्टर की आवाज़ में
गुडमार्निंग !

मृत्यु बोध

दूसरे ही दिन
आंगन के आर-पार
परस गई
किलटे-किलटे धूप
तुलसी के दाहिने
बिछा आई वही पीढ़ा
वही तकिया

तुम्हारी अम्मा के
काढ़े हुए फूल

सुबह से दोपहर तक
चूल्हे पर पकती रही
माश की दाल
कूण्डी में पिसती रही
पुदीने की चटनी

शाम चाय के संग
आज भी तले थे
कुरकुरे कचनार
रात खाने से पहले
मेज़ पर आमने-सामने
घूरती रही दो थालियां
एक-दूसरे का बन्द चेहरा

आधी रात
मैंने देखी
तुम्हारे हिस्से की चादर
उघड़ी हुई
अनछुई—बे झिझक
तकिए पर से गायब था
तुम्हारे सिर का निशान

अलमारी में
एक के बाद एक
खड़े थे
बांह लटकाए उनींदे कोट
बाथरूम में तुम्हारा ब्रश
मेज़ पर खुली किताब
बिटिया के नाम लिखा पत्र
हर चीज़ पर छपे थे
तुम्हारे हाथों के निशान

एक चीख
छत चढ़ गई

सीढ़ियां उतर गई
मेरी छाती में से
पंख छुड़ाकर
फड़फड़ाकर उड़ा
तुम्हारा नाम
सब दीवारों से टकराकर
बिछ गया फर्श पर
मौत सूंघा कबूतर
नीला पथराया

गण चिह्न

दो चौकियों पर
हो चुकी है तलाशी
मुझे निरापद
समझ लिया गया है
फिलहाल

अभी तप रहे हैं
मेरे कान
पसीने से तरबतर है चेहरा
अंधेरा होते ही
घना जंगल हो जाती है।
मुझे घर पहुंचाने वाली बस

कानों में
गड़ने लगती है
झाड़ियों में छुपे
सियारों की हुआ-हुआ
चीते झपटते हैं सहसा
खल्वाट खोपड़ियों पर
उग आते हैं नरमुण्ड
माथे पर छपी हैं बन्दूकें
गिरेबान से पकड़ कर
पूछती है मुझसे
एक कड़क आवाज़

क्या है तुम्हारा गण चिह्न ?
किस टोले के हो ?

मैं भूल जाता हूं
अपना नाम
देश का नाम
अपने खुदा का नाम

वे सब आते हैं
जलती हुई सलाखें लेकर
मेरे माथे पर
दाग देते हैं
अपना गण चिह्न

नाचने लगते हैं
विकराल नृत्य
खोपड़ियों में से
पीते हैं
लहू की शराब
विचित्र बोली बोलते हैं
शब्द नहीं
दहाड़ें हैं
चीखें...बस चीखें
एक चीख
शब्द की तलाश में
शताब्दियों तक फैल जाती है ।

[27/1 बालूगंज, शिमला-11005]

चार कविताएं

□ ईशिता राजन

सिमटी छत

सिमटती हुई छत
इन्सानों की भीड़
बदहवास
दिशाओं की तलाश में
आठ कमरों के फ्लैट में
भीड़ बन जाते हुए तीन लोग
उनके साथ जी रहे
तीन तरह के मस्तिष्क
तीन भावनाओं और
तीन विचार-धाराओं के साथ
आठ कमरे मुंह उघाड़
इन्ज़तार करते हैं इन सबका
आपसी लुका-छिपी में
ताकते हैं अपनी विशाल छत
जिसके नीचे तीन लोग नहीं समा पाते
और···
उस चाल में पड़े आठ बच्चे
सिमट कर देखते हैं
अपनी कोठरी का फैलाव
स्नेह की विशाल छत से ढंपे हुए

मैं मौसम नहीं

नहीं हूं सूखा
मैं नहीं हूं बाढ़
या गर्मी, सर्दी, पतझड़, बहार भी
मैं तो हूं शाख
जिस पर मौसम आते हैं,
गुज़र जाते हैं।

बचपन

नदी किनारे
रंगीन पत्थरों के टुकड़े बटोरती
भूल जाती थी मैं
बाकी दुनिया

लहरों के साथ बहते-बहते
दूर निकलकर लौट आना
रेत के घरौंदों में उलझ कर
कच्ची पगडंडियों पर
चप्पल पटकाते
घर लौटने की याद
धुएं की लकीरों में
जब भी झांकती है
गुड़ियों की कहानियों में
मेरा डूबना—
अपनी बेजान सहेली को
सीने से लगाए
मक्की के लम्बे पत्तों से बनी
दीवारों के बीच
बहुत गहरे
चुन लेना कुछ कच्चे फल
पहुंचना भागते हुए
तितलियों के बहुत करीब